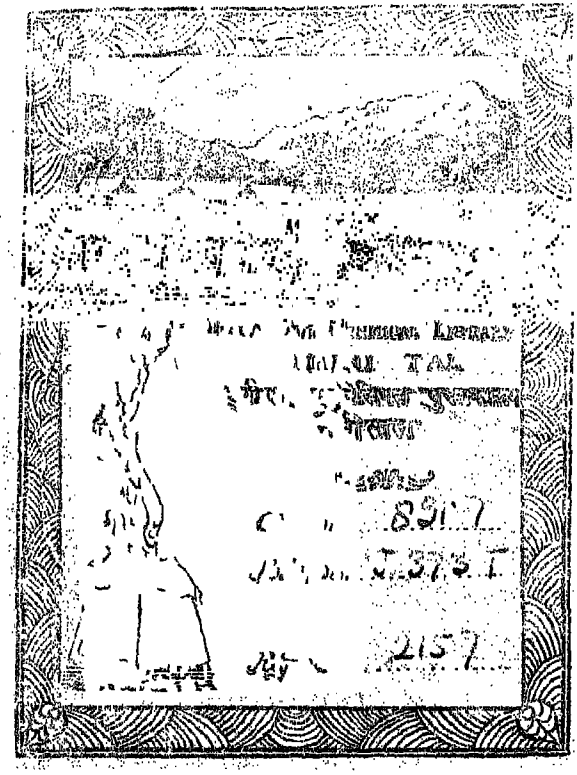

Durga Sah Municipal Library

Naini Tal

दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी

नैनीताल

Class No. 891.7

Book No. ...375 T

Received On. 2157

टीलों की चमक

(हास्य-प्रधान कहानियों का अपूर्व संग्रह)

लेखक
श्री जयनाथ 'नलिन'

प्रकाशक
गौतम बुक डिपो, दिल्ली

प्रकाशक
गौतम बुक डिपो
नई सड़क, दिल्ली ।

मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक
रामाधार
नया हिन्दुस्तान प्रेस, दिल्ली।

प्रकाश

"टीलों की चमक" में मेरी चौदह कहानियाँ हैं—सभी हास्य-व्यंग्य की। पत्थरों के टीले क्या चमकेंगे? टीले भी कहीं जगमगाते-झिलमिलाते हैं? सचमुच, वे चमकते हैं—जगमग—तले मुस्कराते हैं। और तनिक भी सरस हुए तो कितनी जड़ी-बूटियाँ उन पर उग आती हैं—अनेक वन-फूल उन पर खिल उठते हैं। कहते हैं, अनेक जड़ी-बूटियाँ दीप-शिखा-सी मुसकाती हैं। "टीलों की चमक" में स्नान करते—प्रकाश में मुँह धोते-टीले सरस हैं, सजल भी हैं। पर टीले हैं टीले ही। नवनीत वे बन नहीं सकते। उनकी चमक 'रेणुका में रजत' के अतिरिक्त और क्या? "टीलों की चमक" में अनेक ऊँचे-नीचे, छोटे-बड़े टीले खड़े हँस रहे हैं। आप इनको हँसता देखकर भी न हँसें, तो आश्चर्य!

"टीलों की चमक" में समाज और व्यक्ति की तस्वीर है—रंगीनियों से भरी, प्रकाश में खेलती, गौरव से लदी तस्वीर। उस तस्वीर के अन्तर में जो अनजान रंग जमे हैं, इन बाहरी इन्द्र-धनुषी रंगों में जो खोखलापन खेल रहा है, बड़प्पन के गौरव के नीचे जो भुलावा करवटें ले रहा है, वह इस चमक के पुतलों से नहीं छिप सकता। मानव अपने अधिकारों के आतंक से, छल के कौशल से चमक की थेगली लगाकर उसे ढकना चाहता है—पर "टीलों की चमक" में वह नंगा हो जायगा।

लेखक ने समाज के बहुत विस्तृत रूप को सतर्क और सही पुतलियों से देखा है। जीवन के बहुत बड़े भाग में विभिन्न भारतीय समाजों और व्यक्तियों का आन्तरिक अध्ययन करने का अवसर भी उसे मिला। स्वाभाविक है—"टीलों की चमक" समाज का विस्तृत चित्रपट बने। लेखनी ने प्रसन्न पलकों, निष्पक्ष मन, और उल्लास भरे कर्म से चित्र उतारने का प्रयत्न किया है। "टीलों की चमक" और इससे पूर्व प्रकाशित व्यंग्य-पुस्तकों में भी, मैं सचेष्ट रहा हूँ कि व्यंग्य गुदगुदीभरा, उल्लासपूर्ण, और सुख कराता हुआ हो; तीखा, आघातकारी और भारी न हो। इतने पर भी यदि कोई 'नाजुक' दिल गुदगुदी को पसली तोड़ना समझ ले, तो मुझे इसका खेद न होगा।

"टीलों की चमक" में "शतरंज के मुहरे" की अपेक्षा शैली के बन्धन तनिक ढीले कर दिये गए हैं। उसमें शैली अत्यन्त कसी हुई, व्यंग्यात्मक, गहन थी। "शतरंज के मुहरे" में व्यंग्य चित्र हैं और "टीलों की चमक" में कहानियाँ। एक स्कैच और कहानी में जितना कलात्मक भेद है, उतना ही शैली की दृष्टि से दोनों पुस्तकों में मिलेगा। "टीलों की चमक" में व्यंग्य का अनुपात हास्य से कम है। हास्य अधिक है। और हँसने-हँसाने के लिए कसाव अधिक स्वास्थ्यकर नहीं होता। गदरे यौवन से लदी एक बाला की चोली की तनियाँ इतनी कस दी जायं कि देह में निशान पड़ जायं, तो वह बाला यौवन की गुदगुदी पाकर भी हँसते-हँसते लोट-पोट कहाँ हो सकेगी। तनियाँ कसी हों, पर इतनी ही कि उसके अंगों को खिलने देने की उदारता भी उस कसाव में हो। "टीलों की चमक" में

शली के सम्बन्ध में यही ध्यान रखा गया है। पर कला-बाला की चोली इतनी ढीली कभी होनी ही न चाहिए कि चलते हुए अंग-कम्पन हो!

'हिन्दी में हास्य' के विषय में कहना ही क्या! यही सर्वोत्तम है कि पाठकों को "टीलों की चमक" भेंट की जाय। अन्य पुस्तकें वे पढ़ ही चुके हैं। वे ही अपनी सुरुचिपूर्ण पुतलियों से इसे पढ़कर मेरे विषय में कह सकेंगे कि मैं आगे बढ़ा हूँ, या वहीं हूँ।

किसी भी पुस्तक की श्रेष्ठता का श्रेय प्रकाशक को भी मिलना ही चाहिए। यदि "टीलों की चमक" को उचित मान मिला तो इसका श्रेय 'गौतम बुक डिपो' को मिलेगा ही।

—जयनाथ 'नलिन'

क्रम

१. भक्तों की दीनता	...	...	पृष्ठ १
२. फ़िल्मी कहानी	...	...	११
३. कन्व्हेसिंङ्	...	...	२२
४. वह गंजे न थे	...	....	२६
५. नानी ने कहा	...	...	४०
६. रोगी का इलाज	...	...	४६
७. प्राइवेट पत्र	...	...	६१
८. प्रगतिशील प्रेम	...	....	७०
९. उधार-कला	...	...	८३
१०. देवर-भाभी	...	...	६५
११. सोचते-सोचते	...	...	१०५
१२. हनुमान की दुम	...	...	११८
१३. अन्तिम उत्तर	...	...	१२८
१४. मेहमान	...	...	१३६

टीलों की चमक

: १ :

भक्तों की दीनता

जमना जी की रेती में वैष्णवाचार्य श्री १०८ वल्लभनाथ जी का डेरा लगा। आचार्य जी रहते तो थे श्री द्वारिकाधीश के ऐश्वर्य-सदन में, भक्तजनों के कल्याणार्थ सुबह-शाम डेरे में आते थे अवश्य। श्री आचार्य जी गोधूलि-वेला में अज्ञान-अन्ध-कूप में पड़े जीवों को ज्ञान-प्रकाश बाँटते और प्रातः ज्ञान-ज्योति-प्राप्त, दर्शन-प्यासे नयनों को अपने दिव्य रूप का रस-पान कराते। आचार्य जी के पधारने से पहले ही अनेक भक्तजन दर्शन-दान-डेरे में एकत्र होने लगते। आचार्य जी के आने में अभी बहुत देर थी। दर्शन-लोभी धर्म-कमाऊ, पुण्य-समेटू जन भी अभी बहुत ही कम आ पाये थे।

आचार्य जी के दर्शन कर, स्वर्ग पाने की सिफारिशों में वृद्धि हो जाय, यही आस्था और अभिलाषा कर चित्रकूट से महात्मा रामदास भी वृन्दावन पधारे। दासूजी तम्बू के भीतर आये। देखा, तम्बू की एक ओर से कमर लगाये सहजूजी यम-नियम-प्राणायाम के स्टाइल में बैठे, धारणा-ध्यान-समाधि की शैली में ऊँघ रहे हैं। सहजू जी ने खड़ाऊओं की खटपट सुनी, तो पीताम्बर संभाल, केश फटकार, वेणी-सी बनाते हुए उठे, और कर जोड़, फाँट मरोड़, मस्तक नँवा, खड़े हो गये। दासूजी भी रामनामी को फुर्ती से संभाल, कन्धों पर डाल, धर्म-गम्भीर-मुद्रा लिये, बिल्ली की तरह नाप-नाप कर कोमल चरण रखते, सकुचाते-लजाते, मुसकाते-शर्माते आगे बढ़े।

"हें हें-हें-हें, पधारिए महाराज, दर्शन दीजिए, दयाधाम!" सहजूजी दीनता-दासता और विनय-सत्कार प्रकट करते हुए बोले।

दासूजी भी पहुँचे हुए संत, महाभक्त, विनयशीलता में सहजूजी से भी दो कदम आगे। उन्होंने कुहनी से लेकर कलाइयों, हथेलियों, अंगुलियों और अँगूठों के सिरों तक दोनों हाथ जोड़, कमर से ४५ डिग्री का एंगिल बना, तल्लीनता से पलकें मूँद, "अहोभाग्य—अहोभाग्य" कह दण्डवत् करने की ठानी। सहजूजी उड़ती चिड़िया पहचान लें। दासूजी पोज़ बनाते ही रह गये, वह तीर की तरह झपटे और उनके चरणों में लम्बे-लम्बे लेट गये।

दासूजी पर पहला विनय-वार हुआ। झेंप मिटाते, आभार दिखाते सहजूजी को उठाने लगे। मथुरिया भगत, भारी-भरकम चोला, दासूजी पसीना-पसीना हो गये।

"नारायण—नारायण हाय, यह क्या कर डाला, दीनानाथ?" दासूजी उन्हें उठाते हुए बोले।

"ना-ना···राधे-राधे, आज तो जीवन का परम फल पालूं।" कह, उन्होंने दासूजी की टाँगों में और भी कसकर नागफांस डाल दिया।

"नारायण—नारायण! मुझे पाप में मत धकेलो! उठो बहुत हुई···हरे···हरे···!" कहते हुए दासूजी ने उनके कन्धों में हाथ डाल, प्राणायाम चढ़ा, बजरंगबली का ध्यान कर, झटका दिया। भुजाओं की जड़ें हिल गईं—सहजूजी खट से उठ बैठे। दोनों लड़खड़ा कर गिरते-गिरते बचे।

"आज मनोकामना पूरी भई। कितने दिन से ये नयना हरिदरसन के प्यासे। पधारें महाराज—विराजें भगवन्!" सहजूजी कर जोड़ बोले।

"भक्तराज खड़े रहें, और मैं परम अधम विराजूं! नारायण—नारायण!" दासूजी ने दीनता प्रगट की।

'मैं भक्तराज ! राधे-राधे ! मैं तो महा-अज्ञानी, मूरख, खल-कामी, परम पापी, प्रपंची···राधे···राधे !' सहजूजी बोले।

'हे महायोगीराज, परम ज्ञानी होकर भी यह दैन्य ? यही तो भक्तों का भूषण—यही आपकी महानता। कहाँ आप, कहाँ मैं—परम नीच, निकाम नारकीय नर। हे हे परमहंस जी !' कह, दासूजी ने सोचा, 'क्या पछाड़ा बेटा को ! क्या याद रखेगा, किसी महात्मा से पाला पड़ा था। आया हमें बनाने—बनावटी दीनता दिखाने !'

सहजूजी भी पुराने विनय-अभ्यासी, दीन-दारिद्र्य-कला-निपुण, अभिनय करते हुए बोले, "परमहँस कहके लज्जित न करें, हे, हे नर-श्रेष्ठ ! मैं परमहंस ? राधे ! राधे !! मैं परमहंस ? मैं तो हूँ परम-नीच, कन्नास कौआ !'

'अहा—काग-भुसुण्डीजी, श्रीरामकथा सुनाने वाले !! भक्तों का मन हर्षाने वाले ! पर मैं तो रहा रजनीचर, तुच्छ, उल्लू का उल्लू !'

'अहोभाग्य—आपके दर्शन पाये ! धन्य-धन्य, हे श्री-लक्ष्मीवाहन जी, अति-मन-भावन जी, सुजन-सुहावनजी, श्री महाउलूक जी ! आप तो महाश्रेष्ठ, पर मैं तो रहा, हाय, चिमगादड़ ही !' कहकर सहजूजी आनन्द-रोमांच से फूल उठे। सोचा, अब तो खा गया मुँह की बेटा, यह चित्रकूटिया सधुक्कड़ा ! चिमगादड़ से अधिक नीचातिनीच और तुच्छातितुच्छ, और क्या ? उल्लू तो श्रीलक्ष्मी जी का वाहन—बनिये-व्यापारियों का इष्टदेव, और चिम-गादड़ ! बेचारा अंधेरे में उलटा लटका रहता है। इसमें अज्ञान का भाव भी प्रकट हो गया। क्या कमाल का रूपक बाँधा ! क्या शानदार चपत दी ! बेटा हमें दीनता दिखाने चले ! यहाँ बड़े-बड़े दिग्गज अखा-ड़ियों को पछाड़ चुके। आया शान गाँठने, उल्लू कहीं का !

दासूजी मान गये। इस ब्रजवासिया बहुरूपिये ने तो सचमुच मात कर दिया। बहुत सोचा, पर दीनता प्रकट करने वाले शब्द और रूपक हाथ न लगे। मन ही मन प्रार्थना की, दीनानाथ-दीनबन्धु-दयानिधे,

मेरी लाज आज तेरे हाथ। दया कर कोई ऐसा रूपक उपमा-अलंकार सुझा कि इस नालायक को पछाड़ दूँ। क्या तेरा पुराना भगत इस रंगे-सियार से हारकर जाये। दासूजी मन ही मन उसे पछाड़ने के मनसूबे बाँधते, धीरे-धीरे आगे बढ़ते गये। सहजूजी प्रसन्नता में गद्‌गद् उनके बांये रेंगते-से रहे। दोनों एक दूसरे को अपने दैन्य से पराजित करने की धुन में और अन्य को बनावटी साधु और रंगा-सियार समझते, आचार्य जी के आसन के पास आ गये।

'विराजें, देवाधिदेव !'

'सुशोभित हों अशरण-शरण।'

दोनों ने एक दूसरे को बैठा दिया। अब नामधाम की चर्चा चली।

किस परम-पावन आसरण से यह महा-महिम चोला पधारा है, परम-प्रभो ? सहजूजी ने पूछा।

यह कलुषित तन, शूकर-कूकर-सा जीवन, श्री तुच्छ चित्रकूट से महा-बृन्दावन-हेतु...दासूजी कर जोड़, मस्तक नँवा, बोले।

परम-पावन अति-मनभावन, पापपुंजन-सावन इस चोले को किस नाम से विन्ती करूं कि मेरे सात जनम के पाप-ताप-शाप नष्ट होवें ?" सहजूजी ने फिर हीं-हीं कर पूछा।

'और इस अमल-धवल-तेज-पुंजधारी आत्मा को किस शब्द से सुमरन करूँ, कि आवागमन के फन्दे टूटें।'

'हँ-हँ-हँ-हँ-हँ—पहले आप,...राधे-राधे।'

'हँ-हँ-हँ-हँ-हँ—आप, नारायण !'

'योगी राज, पहले आप ?'

'हँ-हँ-हँ-हँ, तो मैं आपके दासों के दासों का दास, महादास, दास-दासानुदास, मतिमन्द मानुस, नाम-तुच्छ—रागदास।'

'और, हं-हं-हं-हं-हं—मैं आपके धोबियों का धोबी, मोचियों का

मोची, चाकरों का चाकर, गहाचाकर-चाकचाकानुचाकर महानीच, नीच-नीचातिनीच, नीच सहजू ? सहजूजी ने तपाक से जवाबी वार किया ।

दासूजी हतप्रभ-फिर करारा मात । विनय-आघात खा, तिलमिला उठे । सहजू जी मारे प्रसन्नता के फटे पड़ते, क्या ठोकर दी बेटा को । आज पाला पड़ा,मथुरावासी कृष्ण भक्त से, दासूजी मन ही मन झल्लाये । अबकी बार वह लात दूं इस मथुरिया बौड़म को, जो अखाड़ा छोड़ गोरङ्ग-सा दुम दबाकर भाग जाय । नालायक रटी रटाई भाषा बोलता है, वरना इसके बाप ने भी की है साधु-संगत ?

इस बार सहजूजी को चारों खाने चित्त करने का मौका तलाश करते हुए दासूजी बोले—"ऐसी बातें कह मुझे काँटों में न घसीटें, महामुनि, आप महाशानी, श्री परम-वृन्दावन-धाम निवासी, सुरती-इसमिरती-वेद, पुरान-पाठ, महाग्रंथ श्री भागवत् का परम-परायन, श्री कालिन्दी स्नान, राधावर, नटवर, श्याम का सदा ध्यान । आप तो महा...महा और मैं तो सदा तुच्छ...तुच्छ ।"

सहजूजी जीत पर मुस्कराते सहज-विनय दिखाते हुए बोले, "ग्रंथ-भार लादने से कौन ज्ञानी बना ? मुनि-श्रेष्ठ, बोझ लादकर मैं रहा तो टट्टू का टट्टू ही ।"

"आप टट्टू के टट्टू, तो मैं गधे का गधा", दासूजी ने करारा वार किया । सहजूजी का मुँह फक । दासूजी मन ही मन अपनी जीत पर उछल पड़े—खा गया न बेटा मुंह की । भूल गई चौकड़ी—अब हो गई, सौ सुनार की एक लुहार की । बड़ा अखाड़ची समझ रहा था अपने को । अब बोलती बन्द । टट्टू कहीं का, आया दैन्य भाव दिखाने, हमें पछाड़ने ! यह जीवन कट गया, बड़े बड़े सन्तों से मुठभेड़ करते । आज तक कोई जीत तो जाय ।

सहजूजी ने कृष्ण-कन्हैया, भक्तों की नैया के खिवैया को मनाया, पर उनको कोई जवाब न सूझा । वह भी मान गये, इस बार तो वाकई लगा

गया दुलत्ती थह गधा। चोट खाकर चुप बैठना अपनी पराजय पर मुहर लगाना। तुरन्त भरे-गले, गद्-गद् वाणी, सिसकते स्वर में सूरदास का पद गाने लगे—

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तन दियो ताहि बिसरायो ऐसो कौन हरामी।
भरि भरि उदर विषय कौ धावौं जैसे सूकर गामी।
पापी कौन बड़ा है मोतें सब पतितन में नामी।
मोसम कौन कुटिल खल कामी।
का···मी···का···अ···खलु कामी।

गाना समाप्त कर दीनवाणी और छलकती आंखों से, बोले—"बांके बिहारी, किस मुँह से तुम्हारे पास आऊँ? मैं पापों का पुंज, जीवन-जनम विषय-भोग में गंवाया। हाय आज भी परनारी को कैसी लालचभरी नजर से देखता हूँ। हायरे गोपियों के चीर हरैया, द्रोपदी के चीर बढ़ैया, गैया चरैया, हे कन्हैया मन विषय वासना का दास आज भी किसी की छलकती जवानी पर दीवाना। किसी कजरारे नैनों वाली सुकुमारी नारी, की लटकती चाल, मदभरी नुपूर की रुन-झुन-सुन हृदय हाथ में नहीं रहता। हाय कामदेव अब भी पंचशर ताने है। हे सुदर्शन धारी समदर्शी··· भगवान् मेरा निस्तार कैसे हो···आज भी हाय तुमसे इतना विमुख!

थोड़ी देर तक सहजूजी हुबक हुबक कर हड़की लेते रहे। तब तक दासूजी ने भी गला साफ कर, मुँह रुआ सा बना, सुर अलापना शुरू कर दिया। करुण-कण्ठ डबडबाई पलकों, पश्चात्ताप की वाणी में यह गाने लगे—

माधव जी मो सम मन्द न कोऊ!
पतितन को सिरमौर, कौन है मो समान जगमाहीं?
सब विधि हीन मलीन दीन अति लीन विषय कोउ नाहीं।

प्रभुजी मो सम मन्द न कोऊ···
कोऊ···

दासूजी भी गाना समाप्त कर दो चार मिनट तक हिचक-हिचक अहु-अहु करते रहे। करुण-विनय आत्मनिवेदन की पराकाष्ठा कर दी।

दोनों ही एक दूसरे को समझते। बहुरूपिया कहीं का, कैसा अभिनय करता है जैसे भक्ति उमड़ी पड़ती थी। सहजूजी अब बढ़िया बढ़िया शब्दों से दासूजी को उच्च और अपने को तुच्छ बताते तो वह जलभुन उठते। जब दासूजी दैन्य प्रकट करने में सहजूजी से आगे बढ़ जाते, तो वह तिलमिला उठते।

दोनों महात्मा बहुत देर तक मुर्गों की तरह दीनता की चोंचे चलाते रहे—मेढ़ों की तरह पर—सम्मान की टक्करें मारते रहे। तब तक और भी बहुत से दर्शनार्थी एकत्र हो गये। इनके सामने भी बहुत से भगत लोग आ विराजे। पर आचार्य जी अभी तक नहीं आये। इधर सब उपमाएँ और रूपक भी समाप्त होने लगे, दुहराने में मज़ा क्या। बैठे बैठे उकताने से लगे।

"पहले तो इतनी देर कभी न होती थी। न जाने आज क्या...?" सहजूजी बात भी न कह पाये, एक सेवक ने श्री कृष्ण भगवान् की एक शीशे मढ़ी तस्वीर आसन पर ला रखी, प्रसन्न हो दासूजी ने उचक कर देखा। उनकी कुहनी सहजूजी को लग गई। वह मात खाये, तिलमिलाये बैठे ही थे मरते स्वर में बोले महाराज जरा देखकर। हमें भी दर्शन करने हैं—भगवान् के, ऐसा भी क्या...!

दासूजी तो विजय-गर्व में फूले थे ही, उनकी ओर कनखियों से मुसकाते हुए बोले "अहा ये क्या दिव्य रूप है!

सहजूजी हार से झल्लाए थे ऊपर से यह तीखा ढंग—जले पर नमक, तिलमिला उठे। ऐसे नहीं मानेगा यह पाखण्डी। वैश में आ

वह भी दासूजी को एक अनजान सा नोकदार कुहनी मार, ... देखने लगे ।

'क्या करते हो महाराज, दीखता नहीं क्या ?' दासू जी ... होकर बोले ।

'दीखता न होगा तुम्हें ।' सहजूजी ने करारा जवाब दिया ।

'ढोंगी कहीं का दासू जी ने ताना मारा ।'

'अबे चल-चल रंगे सियार ।' सहजूजी खिसियाकर बोले'

'अबे चल नागानाथ पन्थी थू थू ।' कह दासूजी ने घृणा प्रकट की ।

'अबे मुँह काला कर यहाँ से कनफड़िये ।'

'सहजूजी ने महाखुसी हुई हंसी हूँसकर दासूजी की तरह मुँह बनाया ।

'महाअज्ञानी, मूरख खलकामी, लम्पटलबार, लालची, पापी प्रपंची...।'
·दासूजीने सहजूजी पर उनके ही विनय शब्द फेंक मारे ।

'परम नीच, निकाम नारकीय नर, कूकर-शूकर-सा जीवन, पाप पंक में लथपथ मन......।'

सहजूजी ने भी उनकी दैन्यवाणी दोहराई ।

'अरे उड़ता है, कन्नास कौए ?'

'अरे तेरा यहाँ क्या काम रे उल्लू के उल्लू ।'

'कहीं जाकर उलटा लटका रह रे चमगादड़', कहकर दासूजी खिल-खिला पड़े । वाह, बहुत करारा रहा । सहजूजी पर जैसे किसी ने तेज़ाब फेंक मारा—

सहजूजी तिलमिला उठे । चमगादाड़ बनकर वह जितने प्रसन्न और गर्वित हुए थे, दासूजी को विनय-वार से चोट पहुंचाई थी, आह समय की बलिहारी अब इन्हीं शब्दों वह कितने आहत और पराजित ।

लाल-लाल आंखें कर बोले, कहाँ से आ मरा यह चोर उचक्का ? भगवान् के स्थान में ऐसे पापियों का क्या काम ? इनकी सूरत देखकर सारे पुण्य क्षण भर में नष्ट—अभागा ।

गाली सुन, दासूजी आग-बबूला हो गये। हाथापाई करने पर उतारू। मन ही मन महावीर हनुमान का सुमरन कर रामनामी कमर में लपेट तैयार। सहजूजी भी अनेक अखाड़ों में पंजा लड़ा चुके थे, सुदर्शनधारी का ध्यान कर पीताम्बर जांघ में सिर से लपेट सामने आगे। दासू जी हनुमान् जी की औलाद, तो सहजू जी हलधर के वंशधर-दोनों के भुजदण्ड फड़क उठे।

'आज तेरी शामत—' कहकर दासू जी सांड की तरह झपटे।

'तेरी ऐसी की तैसी आज जरूर'··· सहजूजी भी भैंसे-से सूं-सांय करते हुए प्रस्तुत। दोनों उलझ पड़े। भक्तजन दौड़े, शोर मचाया।

'दिव्यधाम परम अस्थान हरे—हरे'—एक भक्त उनको अलग करने को झपटा। 'सामने भगवान्, राधे—राधे—।' दूसरा समझाने को दौड़ा।

'तुम्हें जमनोमैया की सौगंध भैया जो या जगै मैं रार रोपौं', कहते हुए एक चोबे जी भी रेंगते लुढकते उधर आये।

लोगों ने बीच बचाव करा दिया। दोनों मरखने बैलों की तरह भूखे और फूँ फाँप करते अलग हो गये। 'आखिर कोई बात भी?' एक भक्त ने पूछा।"

'बड़ा भगत बनता है, आडम्बरी कहीं का-भक्कार, दीनता दिखाता है, तुलसी का पद गाता है अपने को तुच्छ नीच बताता है—और है कुछ भी नहीं लबारा।' सहजू जी ने करारा ताना दिया।

'तू है बड़ा तपसी? चाण्डाल कहीं का सूर का पद भी अपावन कर दिया। कैसा सिसकियाँ भर भर कर गाया था—मो छम कौन कुटिल खल कामी। बता तू क्या सचमुच ऐसा है? झूठा, बहुरुपिया, उचक्का।' दासूजी ने तीखा व्यंग किया, दोनों सूं-सांय कर उलझने को हुए। एक भक्त ने उन्हें अलग अलग बैठाते हुए कहा, 'किसे झूठा कहूँ, दोनों ही महात्मा है, दोनों ही परम सच्चे।' दोनों एक दूसरे पर तीखी

दृष्टि फेंकते, घृणा-सूचक मुँह बनाते, अलग-अलग जा बैठे। उधर, दासूजी ने गुन-गुनाना शुरू किया।

जो पै रही राम सों नाही।
तो नर खर, कूकर शूकर सम,
वृथा जियत जग माहीं!
जो पै रहनि राम सौ नाहीं!

इधर सहजू जी भी दासू जी की ओर कनखियों से देखते हुए भक्ति का पद गाने लगे —

भजन बिन जीवन जैसे प्रेत!
मलिन मन्द मति डोलत घर घर उदर भरन के हेतु
मुख कठु वचन बकत नित निन्दा सुजन सबै दुख देत
कबहुँ पाप कै पैसा पावब गाडि धूरियां देत
रसना सूर बिगारत कहूँ लौ बूडत कुटुम समेत!
भजन बिन जीवन जैसे प्रेत॥

दोनों तन्मय हो गुनगुनाते, भाते जाते, और कनखियों से एक दूसरे की ओर झाँकते, फिर नयन मूंद ध्यान लगा भक्ति में लीन हो जाते, दोनों प्रसन्न कि बेटा को कस कर सुना रहा हूँ, पहले कौन उठकर जाय, परस्पर नजर बचा दोनों ही जानना चाहते, मान का प्रश्न, प्रथम क्यों उठे। बहुत देर तक दोनों महात्मा एक दूसरे की धैर्य की परीक्षा लेते रहे कि महाप्रभु आचार्य १०८ श्री वल्लभनाथजी आयें, तो दर्शन करके जायँ।

★

: २ :

फिल्मी कहानी

कम नहीं, एम० ए० । दो-तीन कहानी-संग्रह भी निकल चुके । प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में शान से नाम भी आता रहता । साल- दो-साल सम्पादकीय कुर्सी पर बैठ, कलम भी घिसी और जो लिखा वह चमका भी । नई बात पैदा करने की आशा भी मुझ से की जाने लगी । पर यह न समझिये, इसीलिये मुझे 'राधा-फिल्म्स' में रख लिया गया, बल्कि इस लिये कि मेरे सगे चाचा सेठ दत्तामल के हेड-मुनीम हैं । सट्टे का रुख सूँघने में चाचा जी बाजार-भर को चुनौती देते हैं । सेठ दत्तामल की गाजारों में ही नहीं, तिजोरियों में भी चाचा जी की रामभक्तवारी की चमक है ।

मुंशी 'कलेजा' साहब पहले से ही कंपनी के कहानी, संवाद और गीत विभाग के मुखिया थे । उनकी कई पिक्चर निकल भी चुकी थीं । एक-दो गीत 'हिट्' भी हो चुके थे और 'बबरिया झूमर-सी बल खाय' को तो वह अभी तक फिल्मी-गोष्ठियों में गुनगुनाया करते थे । मुझे कलेजा' साहब का असिस्टेन्ट बना दिया गया । एक पिक्चर वह लिख रहे थे, उसी के सिलसिले में 'कलेजा' साहब मुझे फिल्म-टेकनीक की ट्रेनिंग देने लगे । सेठजी का इरादा था, बच्चे को आगे बढ़ाया जाय । ट्रेनिंग लेने और फिल्म की पूरी-पूरी लेखन-टेकनिक सीखने के लिये दो-तीन महीने का का समय भी दिया गया ।

अगली पिक्चर मैं ही लिखूंगा, यह भी मुंशी जी ने मुझे बता दिया ।

मुंशी जी ने तीन महीने में अपनी पिक्चर लिख डाली। अब मुझे आज्ञा हुई कि दूसरी पिक्चर के लिए कहानी लिखूं। सिर में तो चक्कर था ही, साथ ही देख आया 'एमिल जोला'---फ्रेंच ग्रंथकारका प्रसिद्ध जीवन-चित्र। मन में आया, ऐसी ही-एक कहानी किसी हिन्दी-लेखक के जीवन को लेकर लिखनी चाहिये। जोश में आ, उपन्यास-सम्राट प्रेमचंद की जीवन-कहानी लिख डाली। कहानी सुनने और उस पर फिल्मी बहस करने के लिये सेठ जी ने दिन भी तय कर दिया।

सब लोग सेठजी के घर पर ही जमा हुए। चारों तरफ फिल्मी फरिश्तों का जमघट देखा, तो कलेजा धक्-धक् करने लगा। सेठजी ने 'बेटा' कह, कहानी सुनाने का संकेत किया। मैं नींबू चूसने का ध्यान करते हुए फाइल खोलने लगा, तो सहसा 'आइये-आइये' की फुलझड़ियां छूट पड़ीं। देखा, सेठानी जी लजाती-सकुचाती-सी भीतर आने का अभ्यास-सा कर रही हैं।

"अरे, आओ न!" सेठजी ने वहीं बैठे-बैठे कहा और मुन्शी 'कलेजा' फुर्ती से उछल कर दरवाजे पर।

"आइये न माजी···वाह-खूब, मैं तो·····!" 'कलेजा' साहब ने दसों उंगलियों से कमरे की तरफ संकेत किया।

सेठानी जी, दायें हाथ की दो उंगलियों से ओढ़नी का एक किनारा गाल की तरफ ताने, मुसका-सकुचा कर रह गईं। उनकी लाजभरी झिझक देख सेठजी उठे और उन्हें अन्दर लाते हुए बोले, "अरे, चलो न!"

"हमें तो शरम लगे है," सेठानी जी फिर लाज-भरी गुदगुदी से फुदकती-सी बोलीं।

"वाह, माजी, ये सब तो आप के बच्चे हैं!" 'कलेजा' साहब ने बताया।

'और यह तो अपना ही छोकरा है—मुनीम जी का भतीजा···।" सेठजी कहते हुए उनकी कमर पर हाथ रख, उन्हें भीतर ले आये।

वह लजाती-मुसकाती, पुतलियां नचाती, भीतर आईं। कमरे में नमस्ते, प्रणाम, ही ही, हँ हँ, माजी, आदि के ढेर लग गये। सेठानी जी अपनी अठारह वर्षीया लड़की 'बेबी' के पास, रिजर्व सीट पर, फर्स्ट से बैठ गईं। भगतजी ने फिर मेरी तरफ देखा और कहा, "हां, अब शुरू करो।"

मैं कहानी सुनाने के लिये मुंह पूरी तरह खोल भी न पाया कि डायरेक्टर घोष बोल उठे, "लेकिन कास्ट के बारे में भी कुछ तय किया?"

"अशोक और लीला चिटनिस की टीम ठीक रहेगी," प्रोडक्शन-इंचार्ज ने राय दी।

"ये लोग बड़े भारी पड़ जाते हैं। हाई कास्ट रख कर पिक्चर की कौस्ट बढ़ाना···।" सेठ जी ने असहमति प्रकट की।

"माजी, आप की राय में कौन-कौन आर्टिस्ट लिया जाय?" 'कलेजा' साहब ने सेठानी जी से पूछा।

"हमें तो गोरी-दीक्षित की जोड़ी अच्छी लगे है।" सेठानी जी ने भी अपनी अमूल्य सम्मति दे डाली।

"ना, अम्मा, स्वर्णलता को रखना हीरोइन। 'रतन' में कितना गाती है—अखियां मिला के, जिया भरमा के···हो·····हो·····" बेबी-जी ने राग अलापना भी शुरू कर दिया, पर सेठानी जी ने आंखों से बरजा। आह, बेबी जी के अरमान दिल में ही घुट कर रह गये।

कहानी सुनी नहीं, कास्ट पर बहस, मैं बुद्धू-सा सब सुनता रहा—एकाकी-सा देखता रहा।

म्यूजिक डाइरेक्टर मि० नौशाद ने भी मुंह खोला, "राइटर साहब से भी तो पूछ लीजिए, किस-किस आर्टिस्ट को ध्यान में रखकर स्टोरी लिखी है।"

"कहानी के लिए आर्टिस्ट तलाश किये जाते हैं या आर्टिस्टों के लिये कहानी लिखी जाती है?" मैंने थकी वाणी में पूछा।

"हीरो-हीरोइन का ध्यान रखकर लिखा जाय तो तलाश करने में तकलीफ नहीं होती।" 'कलेजा' साहब ने नयी टैकनीक बताई।

"अभी बच्चे हैं राइटर साहब, हँ-हँ-हँ-हँ !" प्रोडक्शन-इंचार्ज ने व्यंग किया।

"अभी इण्डस्ट्री में घुसे हुए दिन ही कितने हुए !" घोष बाबू ने भी कह कर दांत दिखाये !

"फिर भी कहानी तो सुन लीजिये," मैं बोला।

"हाँ—हाँ, कहानी तो पहले ठीक हो जाय," सेठजी ने कह कर मेरी ओर देखा।

"यह कहानी हिन्दी के बहुत बड़े उपन्यासकार बाबू प्रेमचन्द के जीवन की है। 'एमिल जोला' पिक्चर तो आपने देखी ही होगी—वैसी ही यह····· । भारत भर में प्रेमचन्द का बड़ा नाम है। उनकी बहुत-सी रचनाएँ अंग्रेजी और दूसरी भाषाओं में भी·····" मैंने इतना कह सांस ली।

"हाँ, तो कहानी शुरू करो न," सेठ जी ने संकेत किया।

मैंने पढ़ना शुरू किया, "दूर तक जंगल ही जंगल—विमान सुनसान। ऊँची-नीची पतली नागिन-सी टेढ़ी पगडण्डी। झाड़ियाँ ही झाड़ियाँ। खेत ही खेत। बरसात का मौसम और हरियाली। अचानक भीषण तूफान आता है। आसमान से तेज झड़ी लग जाती है, मूसलाधार वर्षा होने लगती है। बिजली कड़कने लगती है, ओले पड़ने लगते हैं। चारों तरफ पानी। इन डरावनी घड़ियों में, इस तूफानी समय, कलेजा कंपाने वाले काल में, बादलों की छाया में ओले और वर्षा के नीचे से गुजरता हुआ एक गरीब विद्यार्थी पैदल चल कर दूर बहुत दूर, यानी ५-६ मील दूर से शहर में पढ़ने को आता है। कट टू—

'बनारस का एक हाई स्कूल। लड़के शोर मचा रहे हैं। वह विद्यार्थी भीगे कपड़ों में लिपटा कांपता हुआ स्कूल में पहुँचता है। आज फीस

नहीं दे पाता। क्लास-टीचर उसे क्लास से बाहर निकाल देता है। उधर सर्दी से कड़कड़ी बंधी है, और इधर यह व्यवहार! और यही है हमारा हीरो प्रेमचन्द।" मैंने जरा साँस ली और सहमी नजर से सेटजी की तरफ देखा।

"ओपनिंग तो बुरा नहीं," सेट जी ने प्रोत्साहित किया।

"लौंग शाट, शानदार चीज है!" कैमरामैन बोला।

"क्या मुन्शी 'कलेजा' इतना भी न सिखा पाते, आखिर तीन महीने तक···।" 'कलेजा' साहब पान की पीक मुंह में ही संभालते हुए बोले।

"हाँ, इसके बाद?" मि० घोष ने पूछा।

"इस के बाद हीरो का मुरझाया चेहरा उस की माँ के मुंह में 'डिजाल्व' होता है। और···" मैंने कहा, और प्रोडक्शन-इंचार्ज कनखियों से जरा मुसकाया।

इस के बाद कट टू, डिजाल्व, फेड-इन, फेड-आउट यह सीन और वह सीन करके पन्द्रह मिनट में ही मैंने कहानी पूरी पढ़ सुनाई। बोझ-सा उतार, सब के मुखों पर आने वाले भावों-अनुभावों को पढ़ने लगा।

"कैसी रही?" 'कलेजा' साहब ने सब की राय ली।

"क्या चलेगा यह शाला स्टोरी। न रोमांस, न शाला कोई, विलेन न कोई सस्पेंस, न इसमें कोई ग्रिप। बस गरीब हीरो पढ़ता है। नौकरी करता है, जोश में नौकरी छोड़ देता है। बहुत बड़ा राइटर बन जाता है—बहुत-सा नाविल्स लिखता है। यह भी शाला कोई स्टोरी हुआ!" मि० घोष ने कहानी की आलोचना कर डाली।

"और क्लाइमेक्स का कहीं पता तक नहीं, सारी स्टोरी पढ़ गये··· एण्ड नो स्ट्रगल एटाल।" प्रोडक्शन-इंचार्ज ने कहा।

"ना-ना, यह तो एक ढांचा है। आप लोग अदल-बदल कर ठीक

बना ले। पहली चीज है, और लड़के को इण्डस्ट्री में आये दिन ही कितने हुए हैं," सेठजी ने समझाया।

"और क्या, मेरे तो बाल पक गये इण्डस्ट्री में। लेकिन आप जानते हैं—शूटिंग शुरू होने से पहले सेठजी क्या गजब की तब्दीलियां कर देते हैं। हाँ, यह बात तो है ही, स्टोरी में रोमांस न आय तो···और साथ ही सस्पेन्स तो स्टोरी की जान है। राइटर की काबलियत का पता तो बढ़िया क्लाइमेक्स से लगता है।" 'कलेजा' साहब ने एक ही बार में सब को पछाड़ दिया।

"पहला तीन चार-सीन तो बिल्कुल ठीक। हीरो जब कालेज में पढ़ता है, तो किसी से उसका प्रेक जरूर होना चाहिए," मि० घोष ने सुझाया।

"प्रेम न किया, तो हीरो किस काम का?" कैमरामैन बोल उठा।

"और उस लड़की' यानी हीरोइन' को एक लड़का पहले ही प्रेम करता है। यही बन जायगा विलेन।" मि० घोष ने तय कर दिया।

"खूब, खूब! प्रेम करने का मौका और होगा ही कहाँ? और क्या बुड्ढा होकर मुहब्बत करेगा किसी छोकरी से?" प्रोडक्शन-इंचार्ज बोला।

"और अब नाम की भी खास वजह हो गई। इसी प्रेम-काण्ड के कारण ही हीरो ने अपना नाम प्रेमचन्द रख लिया, वरना असल नाम तो धनपतराम है।" 'कलेजा' साहब चमकती पुतलियों से बोले, उनकी चमत्कारी अक्ल पर चारों तरफ 'वाहव्वा-वहव्वा' का शोर मच गया। सेठ जी भी प्रसन्न। सेठानीजी भी भ्रू-अवगुंठन से मुसका दीं। 'बेबी' तो उछल पड़ी। मैं बाबले की तरह हक्का-बक्का सा देखता रह गया।

"यहां मनमाना रोमांस दिखा सकते हैं। जी-भर मुहब्बत की चाशनी चखा सकते हैं। पूनो की उजियाली चांदी-सी रात। गंगा की नशीली, रपटती लहरों में हीरो-हिरोइन, बैठे जीवन के सपने बटोर रहे हैं। नौका-विहार, प्ले-ग्राउण्ड में लुका छिपी, चम्पा के कुंजों में आंख-मिचौली, एण्ड सो मैनी थिंग्स। गीतों के लिए भी कितनी सिचुएशन्स निकल आईं!" मि० नौशाद ने शानदार सुझाव रख, अपने काम की भी याद दिला दी।

"लेकिन प्रेमचंद की लाइफ में तो ऐसा कुछ है नहीं। उन दिनों को-ऐजुकेशन भी नहीं थी।" मैंने अधमरे साहस से मुंह खोला।

"भैया, तुम्हें पिक्चर बनानी है या प्रेमचन्द की लाइफ देखनी है बण्डल-पिक्चर बना कर तीन लाख रुपया तो मिट्टी में नहीं डालना!" सेठजी ने कहा।

"अभी ज़माना क्या देखा। कालेज में मौजें कीं। बाप ने भेजा, बेटे ने उड़ाया। यहाँ तो सेठजी की सेवा में बाल सफेद……।" 'कलेजा' साहब ने दांत कुरेदते हुए व्यंग किया।

"प्रेमचन्द गाना भी गायेंगे?"

'हां, कम से कम तीन गाने तो……"प्रोडक्शन-इन्चार्ज बोले।

"तो बेचारे को नचाओगे भी?"

"तुम्हारे प्रेमचन्द क्या महाराज हरिश्चन्द से भी ज्यादा हो गये? अहा, काशी के बाजारों में कैसा दर्दीला गीत गाते हुए जाते हैं। श्मशान तक गाते हैं। और भरतजी भगवान राम की तलाश करते हुए कैसा रुआंसा गीत…क्या गजब का मुखड़ा है—'बता दो-राम गये किस ओर?' और सीताजी का वह गीत—'मुझको भूल गये निर्मोही।' आ—ा…ा…ा राम गये किस……किस……ओर।' मि० नौशाद ने बाकायदा गाना ही शुरू कर दिया।

"बिना गाने का सिनेमा क्या ! गाने तो १०-१२ हों, तो अच्छा।" सेठानी जी भी अब खुल कर सुझाव देने लगीं।

"और क्या, माजी ! और उस पिक्चर में गीत का जो मुखड़ा आपने दिया था, वही गीत 'हिट्' हुआ। मैं तो तभी से माजी की राय का कायल हूँ।" मुन्शी 'कलेजा' ने माजी की राय पर अपनी भी राय चिपका दी।

'अम्मा', 'रतन' की तरह गाने रखवाना। मुझे तो वह गीत बड़ा प्यारा लगता है—गाऊँ ?···अखियाँ मिला के, जिया भरमा के, चले नहीं जाना···हो···चले नहीं जाना !" बेबी ने इस बार तो मन की निकाल ही ली।

"वाह···वाह, मेन तो खूब गाती है ! इस घर में हर आदमी लोग कलाकार है।" मि० घोष ने बेबी की कमर पर प्यार से हाथ फेर उसके अरमानों को गुदगुदा दिया। और वह लचक-लचक गई।

बहुत देर के बाद सेठजी ने मौन तोड़ा, "खैर, तो इस तरह करो। विलेन का करेक्टर बढ़ाना पड़ेगा। हां, एक दिन विलेन हीरो को मारने का षड्यन्त्र रचता है। खीर की प्लेट में विष मिला कर हीरो को खिलाने की कोशिश करता है। हीरो खाने को होता है। चम्मच भर, मुंह में डालना चाहता है। आंखिएं धड़कते दिल से देखती है। बाहर शोर होता है। वह ठहर जाता है। फिर चम्मच भर मुंह में डालना चाहता है। हीरोइन बार-बार प्यार से कहती हैं—'खाइये न। अच्छे, तुम्हें मेरी क़सम !' फिर शोर होता है। अचानक बाहर आग लग जाती है। हीरो उठ कर बाहर झपटता है। प्लेट जमीन पर गिर कर टूट जाती है। और उस खीर को कुत्ता खा लेता है·····।"

सेठजी बात पूरी न कह पाये कि चारों तरफ से 'वाहव्वा-वाहव्वा' 'खूब-खूब' का शोर मच गया। सेठजी ने मुस्काते हुए आगे सुनने का संकेत किया। सब मौन। सेठजी ने फिर कड़क कर कहना शुरू किया, "हां, एक और नई बात। वाह, यह तो सोचा तक न था।"

सब की आँखें सेठजी के मुख पर और कान उनकी जिह्वा पर। सेठजी फिर बोले, "हां, कुत्ता मर जाता है, हीरो को पता चल जाता है, खीर में विष था। और विलेन धूर्तता की हंसी हंसते हुए कहता है, 'यह है इसका प्यार! तुम्हें किस तरह राह से अलग करना चाहती है, और तुम अब भी बुद्धू बने हो सच है, आदमी मोहब्बत में अंधा हो जाता है! और मालूम है, वह तो प्रोफेसर नाग से……।' और इसी बात पर हीरो-हीरोइन में अनबन हो जाती है।"

"आइडिया! आइडिया!" कह मुंशी 'कलेजा', ने फुदककर सेठजी का हाथ चूम लिया। सैठानी जी लाज के मारे ऐसे सिकुड़ गईं, जैसे उनके साथ ही यह शुभ कार्य हुआ हो।

"मारव्हलस! मारव्हलस!" मि० घोष, मारे जोश के, उछल पड़े।

"और यहीं कहानी का ग्रिप—नायाब सस्पेंस!" मि० नाशाद ने कहा।

"इसे कहते हैं रीयल प्रोड्यूसर! यानी प्रोड्यूसर के यही माने अमरीका में हैं—एग्जेक्टली यही।" प्रोडक्शन-इंचार्ज ने अपने फिल्मी-ज्ञान का परिचय दिया।

"यहां तो बिल्कुल उल्टी बात है—स्टोरी पूरी करें सेठजी, नाम हो हम भखुओं का!" 'कलेजा' साहब ने फिर सन्मान भेंट किया।

"और इंडस्ट्री में ऐसे-ऐसे प्रोड्यूसर भी भरे पड़े हैं, रात-दिन खून, पसीना एक करके लिखें बेचारे गरीब राइटर, और नाम जावे प्रोड्यूसर का!" कैमरामैन बोला।

मि० नौशाद बोले, "दूर क्यों जाते हो, उनको ही देखो, सेठ पन…"

"हुश! किसी का नाम लेने से क्या!" मि० घोष ने बात काट दी।

"कोई किसी से छिपा तो है नहीं लाइन में।" 'कलेजा' जी बोले।

"खैर, इन बातों में पड़ने से क्या! हमें अपना काम देखना है कि दूसरे के कजिये- किस्से शुरू करने!"

सेठजी बात कह भी न पाये कि 'कलेजा' ने हाँ में हाँ मिला कर कहा, "बिल्कुल। कोई कुएं में जाय, हमें क्या। क्यों, माजी?" माजी ने केवल मुसका कर उनकी बात पर सही की मुहर लगा दी। सेठ जी ने फिर बात शुरू की, "खैर, हां, मेरे विचार में अब आपकी कहानी पूरी हो गई। क्यों भाई, है न? अगर कोई कमी हो तो...खैर, मुंशी जी, इस लड़के से मिल कर इसे सीन-बाई-सीन लिख डालें। अगले सोमवार तक फाइनल कर लें।"

"और गीतों की सिचुएशन्स?" मि० नौशाद भला अपने लिए निश्चय कराये बिना कैसे उठने दे सकते थे।

अब रह क्या गया—साफ तो है। १२ गाने तो बहुत हो जायेंगे। ८-९ काफी हैं। क्यों मि० घोष?" सेठजी ने अपने निश्चय पर राय मांगी।

"आठ-नौ गाना बस काफी है। एक ड्यूएट, दो हीरो का और दो हीरोइन का। एक साइड-हीरोइन का, एक या दो कोरस।" मि० घोष बोले।

"और क्या? और सिचुएशन्स सारी की सारी नेचरल हैं। फीस न दे सकने पर क्लास से निकाले जाते वक्त वह दर्दभरा गाना गाते हुए निकलता है—'बरबाद हो गई मेरे अरमानों की दुनिया।' या 'तुम्हींने दर्द दिया है, तुम्हीं दवा देना।' और हां-हां, 'हमारे ज़ख्म पै मरहम ज़रा लगा देना। हो...हो लगा देना।' और गंगा में नैया चलाते हुए भी एक ड्यूएट गाते हैं—'चंदा से गोरा है मेरा राजनवा। रेशम से नाज़ुक है मेरी दुल्हनिया'।" मुंशी 'कलेजा' ने सुझाया।

"क्या डान्स नहीं रखना?" सेठानी जी ने नई याद दिलाई।

"क्यों नहीं? चार डांस तो जरूर होंगे।" नौशाद जी बोले।

"दो गाने डांस के साथ दिये जा सकते हैं—हीरोइन प्रेम में मस्त हो जाती है और नाचती है।" सेठजी बोले।

"और, वैसे गाने कहां रखोगे—'अखियां मिला के जिया भरमा के'··· और 'सावन के बादलो, उनसे ये जा कहो···?" 'बेबी', ने पूछा।

"दोनों आजायंगे। बेबीजी के मन के गाने तो इस बार जरूर देने हैं। थर्ड ईयर की परीक्षा के बाद दो महीने की गर्मियों की छुट्टियों मे हीरो घर जाने लगता है तो हीरोइन गाती है—'अखिया लड़ा के···हो, परदेसी बालमा···मो से अखियां लड़ा के···।' और दूसरा गाना वहां आ-जायगा, जब हीरो गलतफहमी में पड़ नाराज हो जाता है, तो हीरोइन गाती है—'सावन के बादलो···उन से ये जा कहो···।" 'कलेजा' साहब ने 'बेबी' के मन की भी कर दी।

"अब आपकी कहानी शानदार बन गई। गाने भी सब आ गये। अब आप भी अपना तान-तंबूरा लेकर तैयारी कर दीजिये, नौशाद जी!" सेठजी ने कहा।

"मैं तो आज से ही तैयार हूँ," नौशाद साहब बोले।

"अच्छा, भाजी, अब कैसी लगी स्टोरी?" 'कलेजा' साहब ने अन्तिम फैसला सुनना चाहा।

"अब तो अच्छी लगै है हमैं भी।" सेठानी जी चमकती आंखों से बोलीं।

कहानी पास हो गई। अब कोई डर नहीं।

"तो अब फिर कब मिल रहे हैं? सेठजी ने सबको चले जाने का संकेत किया। सब उठ खड़े हुए। सेठजी, सेठानी जी, बेबीजी—सबको अलग-अलग कई-कई बार 'साहब जी' कहकर, सब कमरे से बाहर हो गये। मैं भी काठ के उल्लू की तरह बगल में फाइल दबाये, मुंशी 'कलेजा' के पीछे-पीछे चला आया।

प्रेमचंद जी महाराज, अब चढ़े हो इन अक्ल के दलालों, फिल्म वालों के हत्थे! क्या-क्या नाच नचाते हैं, ईश्वर ही मालिक है!

: ३ :

कन्हैयासिंह

आज दोपहर ही बम्बई से आया। गपशप करते, खाते-पीते, भाभी के साथ थोड़ा, मीठा झगड़ा होते-हुआते दिन हवा की लहर की तरह निकल गया। मेरे आगरा आने का समाचार भला मौन कैसे रहता... और उन रोमांटिक दोस्तों से, जो विलायती सिगरेट फूँकते हुए सिगरेट-फैक्टरी के मालिक की छोकरी के सौंदर्य की नाप कर उससे प्रेम हो जाने की कल्पना तक कर बैठते हैं। उन्हें मेरे आने की खबर लगी—सूंघकर सीधे चले आये। एक साथी ने रात को, गाने-बजाने में आने का, निमंत्रण-भी दे दिया।

साढ़े सात बजे, भाभी नींद-बेसुध मुन्नी को ले, ऊपर आईं। उसे सुनाते हुए घड़ी देखकर मैंने कहा, 'अरे आठ तो बजने लगे—और क्या बारह बजे चलोगे ?'

'तुम्हारी भाभी भी तो अभी...।' मित्र बोला।

'क्या ?' भाभी ने मुन्नी को पलंग पर लेटा, थपथपाते हुए पूछा।

'मेरा मतलब—ँ-एँ भाभी, जल्दी खा-पी लिया करो—बड़ी देर कर देती हो। घर-गिरस्ती के काम तो लगे ही रहते हैं। स्वास्थ्य का ध्यान भी तो...और अब तो मुन्नी भी सो गई। हाँ, जल्दी, दो पान लगादो—काफ़ी देर हो गई।'

'अच्छे:, आज भाभी के स्वास्थ्य की इतनी चिन्ता—थैंक्यू !' भाभी मुसकराकर बोली।

'वाह भाभी, चिन्ता न हो! मैं तो बम्बई में भी दिन में २४ घण्टे तुम्हारा ही ध्यान...। अच्छी भाभी, ज़रा जल्दी करो—फुर्ती से दो पान, मेरी अच्छी भाभी। वे बेचारे टापते होंगे।" मैं ज़रा एबिंटग के ढंग में बोला—

'क्या मतलब?'

'अरे भई, वे आये थे न? आज गाना-बजाना कर रहे हैं। बेचारे कितने शरीफ़...बुला गये हैं न? उफ़! आठ तो यहीं बजने लगे...।' मित्र ने कहा।

'ओहो—इसलिये 'अच्छी भाभी—अच्छी भाभी' हो रहा था! आज मेरे स्वास्थ्य का इतना ध्यान! मैं भी तो कहूँ।...तुम्हारा गाना-बजाना अच्छा रहा। बारह बजे आकर किवाड़ें पीटना। नीचे वाली बुढ़िया अलग बड़बड़ाती है।—मैं किवाड़ खोलने नहीं जाऊँगी।' भाभी ने त्योरी चढ़ा, अल्टीमेटम दे दिया।

'बस, जब कभी कहीं जाने का नाम लिया, झगड़े पर उतारू। घर से बाहर कदम रखना मुश्किल।...तुम भी बड़े गीत गाते थे अपनी भाभीजी के...अब देखलो न...। यानी ऐसी भी क्या औरत?' मित्र ने परेशानी का अभिनय किया।

'कैसी औरत हूँ मैं?'

'लाखों में एक, मेरी भाभी। ऐसी औरतें मिलती कहां हैं, भैया?... और वार-प्रोडक्टूस तो...और भी जान का बवाल! तुम औरत के दिल को क्या समझो, भैया? मैं बोला।

'खाक समझोगे औरत के दिल को।' भाभी चिढ़ती-सी बोली।

'और क्या! पति की सुकुमार-हृदया, मुग्धा बाला को कितनी वेदना, कितनी टीस, कितनी पीड़ा, कितनी तड़प...बेताबी...छटपटाहट...और जाने क्या-क्या होती है, इसे वही जानती है। तुम क्या जानो? क्या नहीं पढ़ा रीतिकालीन पुस्तकों में नव-नायिकाओं के बारे में?—अगर पति से

कहा कि डेढ़ वर्ष बाद, सवा मील दूर के गाँवों में एक दिन के लिए जाना है, तो लगी श्रीमती जी सिसकियाँ भरने—उसामें लेने—बेहोश तक होने ! लगी गिड़गिड़ाने, प्रीतम ना जाओ....मैं तुम बिन...। यानी बात की बात में पनाले बहने लगे आसुओं के। भाभी तो फिर भी धीरज रखे हैं !" मैंने कहा।

भाभी कोशिश करने पर भी मुसकान न दबा सकी। ओठ चबाते-मुसकाते हुए बोली, "बस, बातें बनानी आती हैं—लगे लेक्चर झाड़ने।"

बातचीत फिर मुसकान की ओर मुड़ गई—अब मैदान अपने हाथ। मैंने भाभी को, मुसकाती-शर्माती आँखों में शरारत भरी आँखें डालते हुए कहा, 'अच्छा, सुनादो न एक प्यारा सा वियोग-भरा कवित्त—

'ऐरे बनवारी, बिन तेरे सुकुमारी राधा'
काटेगी सुपारी नहीं, पान नहीं खायगी।"

भाभी खिलखिला कर हंसी—हाय राम, इनसे कौन सिर खपाई करे ! मित्र भी हंस दिये। अब काम बना—हंसा, सो फंसा। लेकिन इतने ही में नीचे से आवाज़ आई—बहूरानी...ओ बहूरानी ! और भाभी 'आईजी' कहकर नीचे चली गई।

'बात बनते-बनते रह गई।' मित्र निराशा का सा उच्छ्वास छोड़, पलंग पर कुहनियों की टेक-सी लगा, उसके सहारे लेटते-से, बोले।

'यह चुड़ैल बुढ़िया, ज़हर की गुड़िया, न जाने क्या मंतर फूंक दे।' मैं बोला।

ज्यादा देर न लगी। भाभी फिर ऊपर आने लगी, तो मित्र बोला, 'देख यार, यह आई...ऐसी गम्भीर बनकर...!'

'वह एक्टिंग करूं कि भाभी भी...।'

हम दोनों बनावटी गम्भीरता धारण कर तैयार। एक-एक मिनट कितना भारी लग रहा था। भाभी फिर ऊपर आ गई।

'तो फिर हम चलें, काफ़ी देर हो गई। कुंडी-साकल आदि...।' मैंने बात का सिलसिला शुरू किया।

'हां, वे बेचारे...।' मित्र बोला।

'कभी ब्रिज, कभी शतरंज, कभी नाच-गाना तो कभी कवि-सम्मेलन। मैं इसी की हो गई, कि रत जगा करती रहूँ!" भाभी ने फिर वही गुस्सा दिखाया।

'देखिये न, वे लोग क्या कहेंगे। वादा करके भी न आये। मेरी कितनी बदनामी होगी—कहीं मुंह दिखाने लायक भी...। हमें सोसायटी से काम पड़ता है। इनका क्या, चाहे जो हुकुम करदें। वे लोग भी हमारी प्राब्लम्स क्या समझें...यानी तुम देख रहे हो न...वे तो कह देंगे, औरत से डरता है—औरत के सामने कान तक नहीं हिलाता...।' मित्र ने एक नया दाव चलाया।

'उनका सिर...।' भाभी। तुनक कर बोली।

'और क्या! बदनामी तो होती है भाभी। यानी मारते का हाथ पकड़ा जाय, कहते की जबान को कोई क्या पकड़े? वे तो साफ़ कह देंगे कि औरत से डरता है....तभी तो—और भाई साहब, मैं तो इस नतीजे पर पहुंचा हूँ, नारी ही घर की शोभा है। घर का गौरव मान बढ़ाने वाली। इसलिए मनु महाराज साफ़ कह गये—यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः—हाः-हाः और हाँ, भारतीय नारियों ने कैसे-कैसे महान-कार्य किये, तुम तो सब जानती हो भाभी। तुमसे क्या छिपा है आर्य नारियों का त्यागमय जीवन! उठो भाभी, कड़ा जी करके विदा करो—ऐसी भी क्या दिल की कमज़ोरी।" मैंने कहा।

'हाय राम! मेरा सिर क्यों खाते हो। जाना है, तो जाओ।' भाभी कुछ स्वीकृतिमय इन्कार से बोली।

'वाह, भाभी! तुम्हारी आज्ञा के बिना तो एक पग भी नहीं उठाऊँगा। भारतीय इतिहास में लक्ष्मण जैसे देवरों की कमी नहीं।

जिसने सीता की तरफ़ आँख उठाकर भी नहीं देखा। और पूज्य भाभी की आज्ञा पाते ही धनुष-बाण उठा राम की मदद के लिये चल पड़ा। मेरे सामने लक्ष्मण का आदर्श है, भाभी! ना मानो, तो अभी आज्ञा देकर देखो, हम अभी जाते हैं या नहीं नाच-गाने में?'

मैंने इस चटपटे ढंग में कहा कि भाभी को हँसी-सी आई। वह हँसी दबाकर बोली, 'आप लक्ष्मणजी...और आप लक्ष्मणजी के इष्टदेव उनके बड़े भैया श्रीरामचन्द्रजी महाराज!—प्रणाम!' कह, भाभी खिलखिला कर हँसी।

'और मेरी श्रीमती सीताजी! सीता एक आदर्श नारी। पति के लिए, कितने कष्ट उठाये। राम को वन जाने से मना नहीं किया...इसी तरह तुम भी भाभी...।'

'और क्या इसी तरह हमें...?' मित्र बोला।

'सीताजी को तो राम साथ ले गये थे—अब आये पकड़ में राम-लछमनजी!' भाभी संभल कर बोली।

मित्र ने कमर में नोचा। उफ़—मैं गलत मिसाल दे गया। इतने में मुन्नी ज़रा कुलबुलाई। भाभी उसे थपथपाने लगी। हंसकर, फिर उसने वही बात दोहराई, 'राम-लछमनजी, प्रणाम!'

मेरे दिमाग़ में नई युक्ति आई। मैंने कहा, "ठीक-बिल्कुल ठीक। लेकिन अगर सीताजी को कोई भी बाल-बच्चा होता, तो राम कभी साथ न ले जाते। तुम तो खुद पढ़ी लिखी हो, भाभी, भला वे कहाँ लिये-लिये फिरते मुन्नी को वन में। और कौशल्याजी क्या जाने देतीं, सीताजी को?"

मेरी दलील सुन, भाभी हँसी न रोक सकी।

'तुमसे सिर खपाना बेकार।' भाभी लजा कर बोली।

भाभी की पराजय हो चुकी थी। केवल जाने की स्वीकृति और किवाड़ खोलने की संधि-शर्तों पर हस्ताक्षर होने शेष थे। इतने में चाचाजी ऊपर आ गये। भाभी उन्हें देख किवाड़ की ओट में हो गई।

"बेटी, आज मैं वहीं सो रहूँगा। रामजीवन के यहाँ भागवत है न? आधी-रात किवाड़ खटखटाना? आराम से सो जाना---कुण्डी आदि ठीक लगा लेना, बेटी।' चाचाजी ने कहा।

चाचाजी की बात सुन, भाभी मुँह में आँचल देकर हँसी। मेरी तरफ़ आँखों में हँसते हुए अँगूठा दिखाया। चाचाजी जीना उतरने लगे तो भाभी धीरे-से बाहर आ दबी हँसी हँसते हुए लोट-पोट हो गई—पलंग पर गिर गई। हम दोनों पराजित बुद्धुओं-से मुँह लटकाये खड़े रहे। हमारी ओर देख, भाभी धीरे-से खी-खी करती, हमें चिढ़ाती और लोट-पोट हुए जाती।

बात बदलने के लिए मैंने झेंपते हुए कहा, 'मुन्नी न जाग जाय।' लेकिन बजाय इसके कि वह चुपे, और भी कहकहा लगाकर, बोली, "मुन्नी, उठ तो, ज़रा अपने चाचाजी का श्रीमुख तो देख—क्या शोभाएँ छा रहीं हैं।'

मैं बड़ा हतप्रभ हुआ। भाभी फिर हँसी, तो मित्र बनावटी क्रोध में बोला, 'क्या ही-ही लगाई—यानी कोई बात भी?' पर भाभी हमें चिढ़ाये ही गई।

अचानक बुद्धि में प्रकाश हुआ। नसें झनझनाईं। मैं दौड़कर छज्जे पर पहुँचा। चाचाजी अभी सहन में ही थे। मैंने नीचे आकर कहा, 'चाचा, चा...चा...जी..., भाभी कहती है, पराये घर क्या सोना। अपना घर, नहीं क्या? मेरा क्या, मैं तो ग्यारह-साढ़े ग्यारे बजे तक वैसे ही जागती रहती हूँ...और आज तो हम भी ग्यारह बजे आयेंगे।"

'ना-ना...मेरी कोई बात नहीं बेटी—मेरे लिए न जागना....।' चाचाजी नीचे से बोले।

'सो भाभी...चाचा वहाँ...?' मैं बोला, भाभी ने 'हाँ' का संकेत किया, और मैंने चाचाजी को बताया, 'ना-ना'''चाचा, भाभी कहती है,

यह कभी नहीं हो सकता ! अपने घर आकर सोयें । अच्छा चाचाजी यहीं आकर...भाभी बुरा मान रही हैं ।'

चाचाजी 'अच्छा' कह चले गये, मैं हँसते हुए भाभी की तरफ़ भागा।

'हाय, मैं मर गई—इतना झूठ !' भाभी अपने मुँह पर उंगलियाँ रख, बोली । हम दोनों बड़े जोर से खिलखिलाये। भाभी लजीली मुस्कान से लाल हो गई—आँखों में झेंपती-सी हँसी । मैंने हँसते हुए अँगूठा दिखाया ।

'हाय—बड़े बने हुए हो ! कैसे-कैसे झूठों से पाला पड़ा । हे भगवान् !' भाभी ने मधुर पराजय स्वीकार कर ली ।

'इतिहास, पुराण, आख्यान—सबके प्रमाण दे चुका । उठो, भाभी सजग नारी का जोश लिये, वीरांगना का होश लिये, पर हँ-हँ हँ रोष लिये नहीं, उठो...भाभी, और भारतीय इतिहास में नया आदर्श कायम करो । प्रसन्नता से हमें विदा करो—पति की आन के लिए—देवर की शान के लिए—भारत के मान के लिए, हमें प्रसन्नता से विदा करो—पान खिलाकर, तिलक लगाकर—साज सजाकर । तो हम आयें ?' मैंने कहा ।

'हाँ-हाँ, जाओ बाबा...।' कह भाभी लाज से मुसकाईं ।

'तो जल्दी, दो पान ।' मित्र बोला ।

'चलती बार भी तंग ही करोगे ।' कह भाभी सफ़ाई से पान लगाकर देते हुए बोलीं, 'जल्दी आ जाना ।'

'मेरी तो आदत ही नहीं कहीं जाने की । सुबह-सुबह से अब कहीं तुम्हारी आज्ञा से....।"

'अच्छा जी !' भाभी मुझे बनाते हुए बोलीं, और हम हँसते हुए ज़ीने से उतरने लगे ।

★

: ४ :

वह गंजे न थे

सोहनलाल के जीवन की कराह-भरी घटना—एक घातक अकस्मात्। बाल सिर से कब रूठ गये—कब सुन्दरता को घायल कर चले गये, व्यस्त जीवन में पता तक न चला। जैसे बूढ़ा बाप अपने एकलौते बेटे के विवाह के सपने देखते हुए सोता रहे, बेटा रात में ही घर से भाग जाय! आयु तीस की सीमा छोड़ एक-दो पग भी न बढ़ने पाई, खोपड़ी गंजी पतीली-सी चमचमाने लगी। वैसे तो अब भी ऊसर में गर्मी की दूब-से पन्द्रह-बीस बाल इधर-उधर छिटके थे, पर ये जीवन की सघन हरियाली तो नहीं बन सकते—सिर की लहलहाती खेती तो नहीं कहला सकते।

बाल-वियोग का घाव सोहनलाल को तड़पा देता। शीशे में गंजी चाँद देखते, दर्दीली आहें भरकर रह जाते। कैसे शानदार बाल थे! कालेज-भर में धूम—बड़े-बड़े ताल्लुक़दारों के लड़के ईर्ष्या करते। क्या बारीक लकीर-सी माँग निकलती। बाल-शृंगार-प्रियता में अच्छे-अच्छे शौकीन रंगीले-रसीले युवक मात खाते। कालेज-कुमारियां आगे-पीछे चक्कर काटतीं। पर आज·····आज तो·····आह! हाय वे दिन—!

और अब तो उनके घाव में निर्ममता से नमक मल दिया गया। जैसे रिसता फोड़ा बेदर्दी से मसल दिया गया हो। लीला का निष्ठुर उत्तर पा सोहनलाल तिलमिला उठे। सोहन लीला को प्रेम करते ही थे। बहुत

दिन से आशा का तार पकड़ सपनों में भूल रहे थे। हा, बात यों हुई—लीला बहुत दिन बाद सोहनलाल के पास आई तो सोहनलाल ने आशा और विश्वास से कहा, 'अब तो 'हां' कर दो लीला।'

'काश, मैं 'हां' कर सकती! मुझे कितनी प्रसन्नता होती, मिस्टर मोहन!' लीला निष्ठुर मुसकान से बोली।

'क्या मेरी शिक्षा-सभ्यता में कोई कमी—क्या मैं आँख-नाक, दांत-कान, हाथ-पैर से···?'

'ओह—लेकिन मिस्टर सोहन,···'

'लेकिन क्या?'

'काश तुम गंजे न होते।'

'तो क्या कोई मैं गंजा हूँ! बीमारी से दस-बीस बाल···'

'यह मैं कैसे कहूँ, पर बरसों से मैं तो···'

'इसका मतलब—मेरी खोपड़ी पर बाल थे ही नहीं! यह तुम क्या कहने लगीं, लीला! रेशम-से काले-काले लच्छेदार बाल···उफ़ नाम विधि की विडम्बना—काल की कराल गति—भाग्य का फेर···टाइफाइड ने सर्वनाश कर दिया। इस अवसर पर, जब तुम से संवेदना-सहानुभूति की आशा थी, यह तीखा व्यंग! तुम्हारा हृदय इतना पाषाण हो गया लीला!' सोहनलाल ने लीला पर व्यथित व्यंग किया।

'मुझे ग़लत न समझो मिस्टर सोहन। सचमुच इस बाल-विनाश से मेरे हृदय को···मैं सचमुच, तुम्हारे शोक में बहुत दुखी हूँ। काश, अब भी वे लच्छेदार लटें लहरातीं—वे भौंरे भाल पर मँडराते।' लीला ने बनावटी संवेदना प्रकट की।

'तो क्या मैं सदा ऐसा ही·····क्या अब कभी सर पर बाल नहीं आयेंगे?'

'ईश्वर करे, अब भी यह असम्भव आश्चर्य हो जाय!'

'तो क्या उत्तर है ?' सोहनलाल ने फिर आशा की उँगली पकड़ी।

'विवश हूँ मिस्टर सोहन। गई जवानी, उजड़ी फसल, कब हरियाती है ?' लीला साफ इन्कार कर गई।

'लीला, तुमसे ऐसी आशा न थी।'

'आयम् वेरी सौरी—मुझे खेद है।' कहकर लीला चली गई।

सोहनलाल बड़े हतप्रभ-से हुए। पराजित हो सोचने लगे—आह, आज सिर पर बाल होते तो यह मामूली छोकरी इस प्रकार तिरस्कार न कर जाती। पर क्या बाल ही जीवन का आदर्श—बाल ही जीवन-सर्वस्व ? बालों का इतना महत्व ! आत्मा का कोई मूल्य नहीं—हृदय का कुछ मान नहीं—भावना की तनिक कदर नहीं ? ओह—भारतीय नारी, आज तू क्या से क्या हो गई ? यह विलासिता—यह भौतिकता—यह फैशनपरस्ती—नारी को कहाँ से कहाँ ले जायगी ! क्या पहले विवाह नहीं होते थे ! उनके सामने क्या यही आदर्श था ? गांधारी-सी भारतीय आदर्श नारी ! जिसने कभी प्रयत्न भी नहीं किया जानने का कि धृतराष्ट्र गंजा है या सबाल ? पर क्या सचमुच, मैं इतना गंजा हूँ ?

सोहनलाल के हृदय में भाव-मंथन होने लगा। व्यथित हो उठे। फिर भी विश्वास बटोर धीरज धर अपने को ढाढस दिया—मैं इतना गंजा तो नहीं कि लीला जैसी छोकरी को मेरा अपमान करने का अधिकार हो।

शीशा उठाया। सिर को हर पहलू घुमा, दायें-बायें सहायक शीशा लगा, बड़े ध्यान से देखा। दस-बीस बाल चौरस मैदान में उदास-से खड़े थे। खोपड़ी की खाल चुटकियों से दबाकर रोम-छिद्रों की जाँच की। लगा, जैसे जड़ें भरने लगी हैं। आशा बंधी, खोपड़ी अब भी उपजाऊ है। थोड़ा-बहुत जतन किया जाय, तो बालों की फसल लहलहाने लगे। फिर वही लहराती बल खाती लटें—फिर वही सघन वन में गगड़ौंदी-सी बारीक माँग। लीला, फिर न कहना कि खबर न दी। तुमने अपने

हाथों ही अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार ली—अपने आप ही अपना विनाश कर लिया। मेरा क्या गया, तुम्हारा ही आगम बिगड़ा।

\+ \+ \+

पुनः काले-काले मतवाले केश प्राप्त कर लीला के कठोर व्यवहार का सबल-सक्रिय उत्तर देने की सोहनलाल ने प्रतिज्ञा की। बाजार में बालोत्पादक और बाल संजीवनियों की क्या कमी। ऐसी-ऐसी दवाएँ हैं, बांझ खोपड़ी भी बालों से भर जाय। यहाँ तो शीश-भूमि परम उर्वरी है। अभी तक उधर जान-बूझकर ध्यान ही नहीं दिया था। जिस नारी के तिरस्कार भरे ताने ने तुलसीदास को अमर कवि बना दिया, क्या वह मुझे बाल-सम्पन्न नहीं बना सकता। लीला, तुमने एक स्वाभिमानी पुरुष के अहम् को ठोकर मारी है। तुम देखोगी, सोहनलाल चोट खाये सर्प के समान तुमसे बदला लेगा।

सोहनलाल बाल संवारने में जुट गया। भृंगराज और कैंथरडीन तेल भी आ गये। सिर की साज-संभाल की जाने लगी। 'बाल-उगाओ' प्रोग्राम जीवन का विशेष लक्ष्य बन गया। खोपड़ी के खेत में खाद दी जाने लगी। सोहनलाल सुकुमारता से सिर पर तेल मलते, आशा से मुसकाते जाते और कंघे का हल चलाते। नये अंकुर उगने की नित नई आस लगाते और दस-बीस अवशिष्ट बालों को, सूम की सम्पत्ति के समान, संभालकर रखते।

एक सवेरे सोहनलाल स्नान कर भृंगराज की मालिश करते हुए नवीन केशांकुर उपजाने में तत्पर आत्मविश्वास की पूरी शक्ति सिर में केन्द्रित कर मनोविज्ञान की मरम्मत कर रहे थे। पुराने साथी राजाराम आ पहुंचे। खोपड़ी पर नजर गई तो भौंचक्के! ममताल्लु विस्मय से कहा, 'हैं, यह क्या सोहन भाई? और मुझे खबर तक न दी। उफ्—क्या से क्या हो गया!'

'क्या बताता—और बात भी कौनसी ऐसी थी ?' सोहनलाल लापरवाह मुसकान से बोले।

'खोपड़ी संगमरमर-सी चमक रही है—जैसे कुछ हुआ ही नहीं ?

'अरे, तो इसमें क्या बनता-बिगड़ता है ? मामूली-सी बात पर मातम-पुर्सी करने लगे।'

'यानी भरी जवानी में यह बरबादी—तुम अब भी कलेजा थामे बैठे हो ! कसम से, अगर मेरे साथ यह दुर्घटना होती·····और तुम्हारे लिए कुछ बनता-बिगड़ता नहीं ? सिर की तरफ देखता हूँ, तो कलेजा मुंह को आता है और मालूम है—बाल नहीं, तो आजकल की छोकरियाँ भी कन्नी काट जाती हैं। राजाराम ने सोहनलाल का दबा घाव कुरेद दिया।

'तो, हम कौन इन छोकरियों के पीछे पागल हैं ? जायें भाड़ में !' सोहनलाल ने अपनी निराशा को स्वाभिमान दिया।

'जवानी का यह अपमान ! अब ऐसी बात कही, तो गले में रस्सी बांध, पीपल से लटक जाऊंगा ! शाम को एक शीशी केशामृत भेजता हूँ। सोने से पहले दस बारह मिनट सिर पर मल लिया करो। बीस-पचास दिन में सिर में तिल रखने को जगह रहे, तो कहना।' राजा राम ने अपनी दवा के लिए गाहक खोजते हुए कहा।

'भाई, मेरा तो विश्वास ही उठ गया, इन बाजारू चीजों से ! अब तो...।'

'इसे बाजारू कहते हो ? हम तो गारण्टी करते हैं। यह ऐसे केमिकल्स से बनाई गई है—इससे मलने से सिर में एक प्रकार की बिजली-सी दौड़ने लगती है। इस कष्ट से खोपड़ी के नीचे जो नसों का जाल बिछा है, उसमें सनसनी मच जाती है। इस सेन्सेशन से बालों की जड़ों के सूराख खुल जाते हैं। बाल ऐसे लहलहाते निकलते हैं—कसम तुम्हारे स्वर्गीय

सुन्दर बालों की ! कुछ दिन मलो—गंजापन ऐसा तुम दबा कर भागे···कि···'

'यह अजगटीपन मत चलाओ। हां, यदि कोई वास्तव में अच्छी चीज हो···तो

'सच, सोहन भाई, जब तुम्हारे उन बालों की याद आती है, दिल कराह उठता है। भाई, अब लापरवाही करना अपने और हमारे ऊपर अत्याचार है। अच्छा, मैं चला। आज ही टूर पर जा रहा हूँ।' कह राजाराम उठने लगा।

'चकमा तो नहीं दे रहे—कभी फिर चार महीने बाद सूरत दिखाओ और बहाने बना दो ! कहो तो किसी को भेज कर मंगा लूं ?' सोहनलाल लुभित होकर बोले।

'कभी ऐसा हुआ है आज' तक ? घर वालों को चकमा ? आज ही भेजता हूँ—जाने से पहले।' कह राजा राम चला गया।

'केशामृत' आ गया। सोने से पहिले प्रतिदिन मलवाया जाने लगा। मालिश-कर्ता कभी सर में गुदगुदी करता कभी उंगलियों की चहल कदमी—सिर में मीठी मीठी झनझनाहट होती, हल्की हल्की खुजली-सी लगती। समझते बिजली की लहर दौड़ रही है। बीस पच्चीस दिन तक तेल मला जाता रहा। उगते अंकुर को देखा, नजर लगी। पूरा अपशकुन। कभी सोहनलाल ने कनखियों से भी न झाँका कि ठठरी पर कितने नये अंकुर उग आये। और इसलिये भी कि शीश-राद● जब बालों से भर जाय, तभी देखने में आत्मिक सुख विस्मयजनक आनन्द।

एक रात सोहनलाल ने सपना देखा—बालों से सिर भर गया। क्या घनछत लच्छेदार बाल ! वासन्ती वन से कैसे शोभित हैं ! नशा जगा देते हैं देखने वालों पर जादू सा कर देते हैं। क्या नुकीली मांग निकलती है ! वाह भाई, राजाराम तुम निकले अपनी बात का पास करने वाले ! तुमने

मित्रता का मूल्य चुकाया—वाह के इतने धनी! सोहनलाल सपने मे आनन्द-विह्वल हो उठे। नींद टूटी—दिन काफी चढ़ चुका था।

आशा की चमक आँखो में खिलाते, विश्वास का प्रकाश मुंह पर झिलमिलाते, सपने को सत्य समझ, सोचने लगे—क्या शानदार सपना! थोड़े ही दिनों में सघन केश—हवासे खेलती लटें। लीला को सबक न सिखाया तो मेरा नाम सोहनलाल नहीं। जब देखेगी, ऑक्सफोर्ड लहरदार इस्टाइल, तो कहेगी 'क्षमा करो मिस्टर सोहनलाल। मैंने भूल की। I am extremely sorry मैं अब तैयार हूँ।' मै विजय-मुस्कान से उत्तर दूंगा, Miss Lila. 'You have missed the bus तुमने स्वर्ण संयोग खो दिया।

प्रसन्नता की स्फूर्ति में सोहनलाल ने स्नान किया। थोड़ा-सा तेल हथेली पर रख सुकुमार मर्दन किया। दर्पण उठाया, मुस्काकर देखा—एकदम सन्न! मुंह फक! पृथ्वी घूम गई—शीशा हाथ से गिर पड़ा। वेदना-भरी एक घायल कराह! सत्यानाश! तेरा बुरा हो पाजी! सिर के सारे बाल नदारत! पल्ले की पूंजी भी गई! विश्वास दिलाकर गला घोटना! परमात्मा तेरा भला करे, राजाराम! आह, दुश्मन मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था!

कलेजा थाम, आराम कुर्सी पर गिर पड़े।

\+ \+ \+

लगभग एक महीने बाद राजाराम भेंट करने आया। देखते ही सोहन लाल ने आड़े हाथों लिया, 'यह विश्वासघात? कोई और उल्लू बनाने को नहीं मिला। मुझ से किस-किस जन्म का वैर निकाला? दोस्तों को भी धोखा! सांप सब जगह टेढ़ा चले तो चले, बांबी में तो सीधा चलता है।'

'आते ही दुगाली दागने लगे—आखिर हुआ क्या, सोहन भाई!' राजाराम ने आश्चर्य से पूछा।

'जैसे कुछ हुआ ही नहीं—सर्वनाश तो कर दिया। एक बाल भी नहीं छोड़ा। तुम्हारी दवा चाट गई न सब कुछ। मैं क्या कोई बिलकुल गंजा था। और अब तो पैदावार के दिन आये ही थे। कर दिया न सब चौपट! देखते नहीं केशामृत की करतूत?—अब भी कहते हो, आखिर हुआ?' कह, राजाराम ने खल्वाट खोपड़ी सामने कर दी।

'ओह यह बात? हं-हं-हं-हं, सोहन भाई।' राजाराम हंसा।

'तुम्हें ही-ही सूझी है अब! किसी के घर में आग लगाकर तापना?' सोहनलाल और भी गर्म हुए।

'हं-हं-हं हं, मैं उस दिन कहना भूल गया—यही केशामृत की की विशेषता है। पहले पुराने बाल गिर जाते है, फिर नये उगते है। ठीक पतझड़ के बाद वसन्त!' राजाराम ने समझाया।

'हो तो पक्के कन्वैसर। अब इस तरह मुझे बनाने लगे! पूरे बन्नैत! सोहनलाल मुस्करा कर बोले।

'पुराने गिराऊ बालों की जड़ों में विषैले जर्म्स होते है! वे नये बालों को भी खा जाते हैं—ठीक घुन के कीड़ों की तरह। आज तक जितने भी तेल या औषध बने, वे बाल तो उगाते हैं, पर जर्म्स नहीं मारते। आदमी फिर गंजे का गंजा। केवल हमने ही इस भेद को समझा। इलाज बिलकुल प्राकृतिक है। और भी बहुत से गाहकों से ऐसी ही शिकायतें आईं। इसका अ ' है; तेलने अपना पूरा-पूरा असर किया है—बहुत लाभ पहुँचाया।'

राजाराम के लेक्चर का इच्छित प्रभाव पड़ा। सोहनलाल को विश्वास हुआ—बात तो तर्क-सम्मत है; रेलवे तक पुलों के पुराने गाटर हटा कर नये गाटर लगाती है? यह नहीं कि एक आध बेकार टूटा हुआ निकाल कर उसके स्थान पर नया लगा दे...पूरा पुल ही बदला जाता है। तर्क ठीक मालूम हुआ। पर वह बाहरी अविश्वास से बोले, 'फिर वही अजपटा बाली बातें? हो तुम भी बड़े चलते-पुर्जे, राजाराम भाई!'

'चालीस दिन का कोर्स पूरा तो करके देखो, बीच में छोड़ने से क्या फायदा ?' राजाराम ने उस की आशा को और भी चमका दी।

'अब तो मैं कोरस-फोरस के चक्कर में पड़ने वाला नहीं।'

'फिर वह हठ ? मैं एक शीशी और भेज दूंगा। पन्द्रह दिन और मलवा लो। और फिर सच, कसम तुम्हारे भावी बालों की...काम बना बनाया... कहते हुए राजाराम ने उसकी उंगलियां दबाईं।

'अच्छा बाबा, करूंगा। पन्द्रह दिन छोड़, बीस दिन तक करूंगा—बस अब तो पीछा छोड़ो।' सोहनलाल भीतरी कामना से बोले।

राजाराम शीशी भेजने का वादा कर चला गया। शीशी आगई। बहुत प्यार और तन्मयता से सिर की मसाज होने लगी। सोहनलाल प्रतिदिन उत्सुक पुतलियों से नये बालों की तलाश करते, पर नये बाल तो क्या, उनकी छाया भी कहीं दूर तक दिखाई न देती। खोपड़ी नंगी चट्टान के समान चमकती। जहां घास तो क्या, दरार में एक तिनका तक नहीं।

अब भी मस्तक से जरा उठकर दो बाल रह गये थे। उनकी साज-संवार करते, सुगन्धित तेल लगाते, सुकुमारता से कंघा करते। टोपी से बाहर उन्हें मस्तक पर लेटाते। कभी बेरी की डीठ से बचाने के लिए सुगफाकर टोपी के भीतर कर लेते।

सोहनलाल बड़े प्यार और आनन्द से उनमें मांग निकालते। सघन केशों के बीच बारीक मांग का सौंदर्य कल्पित कर मुसकाते। कभी उन को ऊपर की ओर मोड़ लहरिया ऑक्सफोर्ड स्टाइल का स्वाद लेते। कभी दोनों को दायें से बायें करते। कभी बायें से दायें। केश कला की हर शैली में बालों की शोभा देखते। दर्पण में पुतलियां जमाये एक बार कंघा घुमाया—दोनों को बायें से दायें लहराना चाहा। कंघा हाथ में सम्भाल, ध्यान से देखा—यह क्या ! दोनों बाल...! आह सत्यानास ! कंघा देखा—दोनों बाल उसके दांतों में फंसे तड़प रहे हैं ! एक तीखी चीख निकली—आह हत्यारे कंघा फेंक पलंग पर ढह गये ! शीशी की अब-

शेष शोभा भी अतीत ! जीवन-रस भी सूख गया। आशा-फुलवारी का अन्तिम सुमन भी मुरझा गिरा !

बहुत देर तक बालों की अकाल मृत्यु पर पड़े तड़पते रहे। पर धीरज ही महानता का लक्षण। सहनशीलता ही वीरता की पहचान, यही सोच, चिर रोगी के समान सम्भलते से उठे। धीरे से भरा गला और भीगी पलकें लिये, दोनों बाल कंघे के दाँतों से निकाले। उन्हें देख आँसुओं में फूट पड़े, 'तुम भी दगा दे गये—इतने निष्ठुर निकले ! जीवन का अंतिम आधार भी छिन गया !' बहुत देर तक शोकाकुल वाणी में सिसकते बालों को उलट-पलट, घुमा फिरा कर देखते रहे।

बहुत देर तक विलाप करने के बाद दिल को समझाया। आहें भरते, छलकती पलकों से उन पर सुगंधित तेल लगाया। उन्हें साफ-सी सफेद शीशी में रख कार्क लगा दिया। एक ठंडी आह भर मन ही मन कहने लगे—लो लीला अब उत्सव मनाओ—घी के दीप जलाओ ! तुम्हारे मन की पूरी हो गई। लेकिन याद रखो, लीला, अपने बारे में तुम्हें भ्रम न होने दूंगा। तुम कुछ भी गलत प्रचार करो। पर, जब रिसर्च होगी मेरे मरने के बाद, मेरे बारे में खोजें होंगी, तब ये दोनों बाल गवाह होंगे कि सोहनलाल के सिर पर भी बाल थे। वह गंजे न थे।

★

: ५ :

नानी ने कहा

नानी अपनी ऊनी चादर सम्भालते हुए भीतर आई। सभी बालकों में चंचल प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

'अच्छी नानी, उड़नखटोले वाली कहानी।'

'हाँ-हाँ, नानी—एक था राजा एक थी रानी।'

'आज तो परदेश की कहानी।'

अनेक वाणी चंचल हो उठीं। सभी बालक ताली बजाकर खिल-खिला पड़े, नानी को भी हँसी आ गई, 'अच्छा, शैतानों, सुनाती हूँ।' कह, नानी बैठ गई। बालक आनन्द उत्साह से 'हो-हो' कर उठे।

नानी ने कहना शुरू किया, महाराज हरिश्चन्द और करन से दानी, भगवान राम से न्यायी इस देश में जन्मे। आज तुम्हें, दया धर्म और न्याय नीति की ऐसी ही कहानी सुनाती हूँ। सो ना जाना—नहीं तो कहने सुनने का पुन्न नहीं होगा।

'नहीं, नहीं नानी,' बालक चिल्लाये।

नानी ने कहानी कहनी शुरू की और बालकों ने 'हुँ-हूँ' का हुंकारा भरा।

नानी बोली, सलीमपुर रेलवे स्टेशन की बात है, बालको यहां गाड़ियां कोयला और पानी लेती हैं। हां गार्ड ने सीटी बजायी, फुर्ती से हरी झण्डी दिखाई। पानी लेते यात्री नल पर से भागे। नमाजी लोग कपड़े का कान पकड़ घसीटते दौड़े। नहाते नर भीगे तौलिये सम्भालते झपटे।

ड्राइवर ने इंजन से मुंह निकाल गार्ड की ओर झांका। इंजन ने जोर से सीटी दी। गाड़ी चलने को हुई और मौर्निंग सूट पहने, पाइप से धुंआ उड़ाते, अफसरी चाल दिखाते एक सज्जन 'ओ-सी' की तरफ बढ़े। झपट कर गार्ड ने 'गार्ड आव आनर' दिया। समझे, गार्ड-आव-आनर!— अदब से सलाम किया।

'नानी, यह सज्जन कौन थे?' एक बालक ने पूछा।

'बीच में बात नहीं काटते बेटा।' नानी बोली।

'और क्या नानी, गंठकटा अच्छा—बतकटा अच्छा नहीं!' एक बालक ने सयानापन दिखाया।

नानी ने फिर कहना शुरू किया, हां तो वह अफसर डिब्बे के पास आ गया।

'गाड़ी चलने लगी?' अफसर ने पूछा।

'जी हाँ—सरकार।' गार्ड बोला।

'थोड़ी देर रोक रखो—हम स्नान करेंगे।' कहते हुए अफसर ने डिब्बे में घुस द्वार बन्द कर लिया।

गार्ड ने फिर लाल झण्डी दिखाई। गाड़ी 'चूं S-S-S खड़क' करके रुक गई। गार्ड लाल झण्डी हिलाते हुए ड्राइवर के पास आया।

'क्या हुआ?' ड्राइवर ने आश्चर्य किया।

'मिनिस्टर साहब की आज्ञा—मालिक हैं। जीतपुर जा रहे हैं। चाहें, तो इसे दिन भर खड़ा रखें।' गार्ड ने बताया।

'ओहो'''मिनिस्टर साहब'''कह कर बालक ताली बजा कर हंसे।

नानी ने फिर कहना आरंभ किया।

मालूम हो गया न? ड्राइवर, खलासी, झोंका, मुसकराकर सिगरेट जलाने लगे। और गार्ड, एस. एम. के कमरे में आ उसे सुनाते हुए बोला, 'दस पन्द्रह मिनट की बात—रास्ते में पूरे हो जायंगे।'

'क्या?' एस. एम., कागज पत्रों में उलझे-उलझे ही, बोला।

'मिनिस्टर सा'ब नहा रहे हैं—गाड़ी रोक रखी है। अगर मुझ से जवाब मांगा गया'''।'

'यही स्टेटमेंट दे दीजिये।'

'लेकिन''''लेकिन आप ?'

'मैं तो टोकिन दे चुका।' एस. एम. ने रूखा-सा जवाब दे दिया। गार्ड ने घबराकर घड़ी की ओर देखा, पन्द्रह मिनट बीत चुके।

वह दौड़ा-दौड़ा गाड़ी की तरफ आया। 'ओ-सी' का द्वार बन्द। परेशानी की सांस छोड़ फिर दौड़ा-दौड़ा एस. एम. के कमरे में।

'हे भगवान—क्या करूं ? आप ही ज़रा '''।' गार्ड बोला।

'मैं तो टोकिन दे चुका। गाड़ी ले जायं या यहीं खड़ी रखें, आप की इच्छा।' एस. एम. ने फिर वही रूखा उत्तर दिया।

और इतने में कण्ट्रोलर का टेलीफोन आया। गार्ड ने बातें की। टेलीफ़ोन बन्द करके बोला, 'लो, एक और नई मुसीबत। कहते हैं, जाकर दरवाजा खटखटाओ। कहो, सारा मीटर गेज बंद पड़ा है—ट्रैफिक बन्द कर दिया जाय क्या ?...बादशाह आदमी—मैं तो मारा जाऊंगा।'

'इतना घबराते क्यों हो ? पैंतीस मिनट तो हो गये। नहा धोकर 'रघुपत राघो राजाराम' भी कर चुके होंगे अब तो।' एस. एम. ने समझाया।

गार्ड साहस कर 'ओ-सी' की तरफ चला मनाता जाता—हे भगवान, ऐसी माया करदे कि मिनिस्टर साहब पाइप पीते मिलें, कृष्ण-कन्हैया, द्रौपदी की लाज रखैया, मेरी लाज तेरे हाथों। हे बांके बिहारी, सुदर्शनधारी, तेरे जन्म लेते ही कंस के कारागार के कठिन कपाट खट से..खुल पड़े थे। 'ओ-सी' के तुच्छ किवाड़ों की क्या बिसात।

अपनी भक्ति और भगवान की शक्ति की याद दिलाते गार्ड 'ओ-सी' की तरफ आया। दरवाजा बन्द। कान लगा सुनना चाहा। दिल की

धड़कन बढ़ी, पिंडलियों में झनझनी-सी होने लगी, भागा-भागा फिर एस. एम. के कमरे में।

बेचारा सांस भी न ले पाया, फिर घन्टी बजी। गार्ड ने फोन संभाला 'हलो...जी, गया था। एं! हिम्मत न हुई। मैं? मैं सरकार मारा जाउंगा। मेरी नौकरी...। हां-हां...थैंक्यू, सर। लीजिए एस. एम. साहब, आपको कन्ट्रोलर सा'ब।'

गार्ड ने एस. एम. को फोन पकड़ा दिया। एस. एम. कांपते हुए बोला, हुजूर मैं...बूढ़ा आदमी...हाँ-हाँ...अच्छा, थैंक्यू, सर...। अच्छा जो हुक्म...।'

उसने ए. एस. एम. को फोन दिया। वह घबराकर बोला, 'मैं सर? सर मैं तो वैसे ही मैट्रिक फेल। उनकी अंग्रेजी भी न समझ सकूंगा। और इन बुजुर्गों के रहते मैं...। मैं...नहीं...थैंक्यू सरकार। हां, पैटमैन? जी हां सर पैटमैन जी सर? अरे भीखू तेरा ··· फोन।' भीखू ने झपट कर फोन कान पर लगाया। और अदब से झुककर ही फोन पर ही जैहिंद की। 'जो हुक्म सरकार। हम अभी जाइ,' कह भीखू फोन रख 'ओ-सी' की तरफ आया। गार्ड, एस. एम. और ए. एस. एम. उसकी मूर्खता का नतीजा देखने के लिये कमरे से बाहर खड़े हो गये।

भीखू ने दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खुला। मिनिस्टर साहब पाइप पीते हुये दर्शित हुए, भीखू ने झुककर जैहिन्द कह कन्ट्रोल का सन्देश कह सुनाया।

'अरे गाड़ी चल नहीं रही? इतनी लेट!'

'फौरन चलाओ—स्टार्ट एटवन्स!' मिनिस्टर साहब सपने से जागते से बोले!

'जो हुकुम सरकार।' कह भीखू ने झपट कर आते हुए संकेत किया। गार्ड का चेहरा खिल उठा। हरी झण्डी उड़ाते हुए अपने डिब्बे की

तरफ भागा। इंजिन ने सीटी दी और गाड़ी भै ऽ ऽ ऽ भक-भक, और दो घंटे में आ पहुँची जीतपुर।

'गाड़ी रोक क्यों रखी थी, नानी ? चलती गाड़ी में नहीं नहा सकते थे, क्या नानी ?' एक बालक ने पूछा।

चलती गाड़ी में झटके लगते न। हिलते हुए भला कैसे नहाया जा सकता—गिरायें सिर पर पानी और गिर जाय कमर पर...तब ? तब नानी ने समझाया।

'और क्या नानी ! हमारे बाथ-रूम कोई हिलते-डुलते थोड़े ही हैं।' एक बालक ने समर्थन किया।

'वाह—नानी, और उन्हें पता तक न चला, गाड़ी खड़ी है या चल रही...। कह कर एक बालक हंसा।

नानी बोली, हूँ-हूँ-हूँ-हूं पागल कहीं का ! अरे मन्त्री जी ने क्या कभी ड्राइवरी की है, वे क्या कभी गार्ड रहे हैं ! वे तो नेता आदमी—सच्चे देश भक्त, उन्हें क्या मालूम और उन्हें फुर्सत कहां इन बातों के जानने की।...तो हां गाड़ी पहुँची जीतपुर। स्टेशन पर स्वागत के लिए भीड़ की भीड़। पैटमैन से लेकर कुलियों का जमादार तक हार लिये तैयार। मन्त्री जी मुसकराते हुए डिब्बे से उतरे। जय-जयकार—स्वागत-सत्कार—फूल-वर्षा—हाथ-मिलाई—धन्यवाद, बधाई।

मन्त्रीजी स्टेशन से बाहर आ, मोटर में बैठ, कलाई की तरफ देखते हुए अपसरी मुस्कान से बोले, 'यह है आप लोगों का प्रबन्ध। गाड़ी सवा घन्टे लेट। देशोद्धार अधिवेशन—कोने-कोने से नेताओं का आगमन। यह लापरवाही !'

ट्रैफिक मैनेजर का चेहरा फक।

मोटर विश्राम-भवन की तरफ दौड़ चली। ट्रैफिक-मैनेजर और अन्य सभी रेलवे-स्टाफ हक्का-बक्का ! स्वागत पर खूब लात पड़ी।

'दस साल की सर्विस में यह दाग यह रिमार्क !' ट्रैफिक-मैनेजर बड़बड़ाते हुए अपने कमरे में आया।' सम्मिलित षड्यंत्र ; क्या भांग खाकर सो गये थे सब, और यह कन्ट्रोलर क्या फ्लश खेलता रह गया—अफीमची कहीं का ! सभी कम्युनिस्ट बन गये क्या ? अभी मुझ पर शक हो जाय, तो जीवन नष्ट। यह गड़बड़ी। लेकिन इस कन्ट्रोलर ने अगर...और यह गार्ड वगैरह...सभी को होश आ जायगा। अच्छा अभी...'

क्रोध में आ सब को तार खटखटा दिये—गाड़ी सवा घन्टे लेट। लापरवाही के लिए मुअत्तिल—सस्पेण्ड। गार्ड, स्टेशन-मास्टर, कण्ट्रोलर—सब सस्पैंड !

सस्पेंशन का तार मिला तो स्टेशन मास्टर के पैरों से जमीन निकल गई। गार्ड और पैटमैन की पिण्डलियां कांप गईं। एस. एम. ने तैश में आकर ए. ऐस. एम. और पेटमेन को सस्पेण्ड कर दिया। स्टेशन भर में शोक के बादल छा गये। भीखू तो सिर पीट कर रह गया, 'हाय राम, हम का खता किये, जो हमार बाल बच्चा...।'

कण्ट्रोलर सस्पेंशन का तार पढ़ कर आग बबूला हो गया, 'मेरी लापरवाही ! ऐसी की तैसी। आठ साल की सर्विस में दाग। मेरी भूमों क्या गलती। मिनिस्टर साहब अफीम खाकर ऊंघते रहे...और ऊपर से ...यह !'

'मिनिस्टर साहब अफीम क्यों खाते हैं नानी ?' एक बालक बीच में ही बोल पड़ा।

नानी बोली, पगला कहीं का—हुश ! यह तो मुहावरा है। वे अफीम थोड़े ही खाते हैं—देशभक्त होकर भला अफीम ! इसका मतलब लापरवाही करना। तो हां मैं कह रही थी—कन्ट्रोलर बहुत बिगड़ा। गुस्से में आ उसने सारा हाल लिख ट्रैफिक-मैनेजर को तार कर दिया। प्रधान-मन्त्री और गृहमन्त्री को फिर तार खटखटा दिये।

गार्ड और स्टेशन मास्टर ने भी ट्रैफिक-मैनेजर को लिख भेजा—

'गाड़ी तो मिनिस्टर साहब ने रोक रखी थी। वह नहाते रहे—गाड़ी चलने न दी। नहा कर निबटे तो गाड़ी चलने दी। हम सस्पेण्ड किस लिए ?'

शाम को माननीय मन्त्री जी बंगले पर लौटे तो सेक्रेटरी ने तारों का पुलन्दा मेज पर रख दिया।

'यह सब क्या ?' मन्त्री जी ने पूछा।

'गाड़ी लेट थी न—' सेक्रेटरी बोला।

'तो इससे क्या ?'

'ट्रैफिक-मैनेजर ने कन्ट्रोलर को सस्पेंड कर दिया।'

'ठीक किया। देशोद्धार-अधिवेशन पर गाड़ी लेट। देशसेवक राज्य—देशसेवकों के शासन में यह लापरवाही कभी सहन नहीं की जा सकती। मैं किसी की अपील पर ध्यान देने को तैयार नहीं। मजाक समझ लिया! ड्यूटी इज़ ड्यूटी।' मंत्री रोश में बोले।

'कन्ट्रोलर ने अपना एक्सप्लेनेशन प्रीमियर और डिप्टी प्रीमियर को भेजा है। ट्रैफिक-मैनेजर के पास तो उसकी नकल आई है। उसने सारी लिखा-पढ़ी आपके पास भेजी है।" सेक्रेटरी ने कहा।

'पढ़ सुनाओ।'

कण्ट्रोलर ने लिखा है, 'गाड़ी यातायात मंत्री ने रोक रक्खी, गार्ड और एस. एम. के तारों में भी यही बात कही गई है। इस मामले में गार्ड, एस. एम., ए. एस.एम.. पैटमैन—सभी सस्पेण्ड कर दिये गये!'

'ओह यह बात! मामला इतना बढ़ गया! मामूली-सी बात पर इतने आदमी सस्पेण्ड! हम यह अनर्थ कभी नहीं देख सकते। इतने देश-बन्धुओं के बालक भूखे मरें—कभी नहीं। भला सस्पेण्ड करने की क्या पड़ी थी? हमने तो मजाक में कहा था।—नो सेंस आव ह्यूमर!

फ़ौरन ट्रैफ़िक-मैनेजर को टेलीफ़ोन करो—सब का सस्पेंशन कैंसिल, सब तुरन्त बहाल।' कह, माननीय मंत्रीजी तारों का पुलन्दा उलटने-पलटने लगे।

तार पढ़ते-पढ़ते मंत्री जी का हृदय दया से बरसाती नाले की तरह बहने लगा। गला भर आया! इतने आदमियों की दुर्दशा ध्यान कर आँखें छलछला उठीं। वह सहसा छटपटा उठे—

आह इतने आदमियों की रोज़ी का प्रश्न! इतने भाइयों पर मुसीबत। ट्रेनें इन्सान से बड़ी तो नहीं। ट्रेन लेट आती-जाती रहती हैं—पर प्रश्न इतने मानवों की रोटी का है। ट्रेन रोज़ भी लेट आयें-जायें, तो क्या! ट्रेन तो जड़ पदार्थ हैं। इन के देर-सबेर आने से क्या बनता-बिगड़ता है। हम इतने प्राणियों को भूख से तड़पते हुए नहीं देख सकते—नहीं देख सकते, सेक्रेटरी! उनके बालकों के मुख मलीन गम लीन हम कैसे देख पायेंगे। विदेशी शासन को इन्हीं भाइयों के सुख के लिए हमने उखाड़ फेंका। इसलिए तो हमने हुकूमत नहीं सँभाली कि भारत-माँ के इन लाड़ले लालों को बेहाल करें। रामराज्य में सस्पेंशन! राम-राम...अभी सब को...।

माननीय मंत्री जी का गला भर आया। आँखें डबडबा उठीं। हृदय वेदना से बेताब हो उठा। वह सिसकती वाणी में बोले, "सेक्रेटरी—सेक्रेटरी, हमारा हृदय चूर-चूर हुए जा रहा है। तुरन्त टेलीफ़ोन करो—क्षणभर की देरी न हो। सब को बहाल। जब तक सब का सस्पेंशन रद्द नहीं किया जाता, हमें क्षण को भी चैन नहीं। सेक्रेटरी—सेक्रेटरी, शीघ्रता करो।"

"सरकार ज़रा भी जी भारी न करें! मैं अभी...! आप पीड़ित न हों, ऑनरेबल मिनिस्टर।" सेक्रेटरी ने उन्हें धीरज दे, फ़ौरन टेलीफ़ोन किया।

सब पल भर में बहाल। गार्ड, स्टेशन-मास्टर, ए.एस.एम., पेटमैन—किसी की खुशी का ठिकाना न रहा। सब प्रसन्नता से नाच उठे। सबने सोचा—भला रामराज्य में अन्याय! इतने दिनों की सर्विस—किसी ने उँगली तक न उठाई। अवश्य किसी क्लर्क की मूर्खता से...।

सो, हे प्यारे बालको, घटवासी उस परम भगवान की दया से, गौरी पार्वती की कृपा से सब लोग अपने-अपने काम पर लग गये। भगवान् ने सब को दुख दिखाये, सुख दिया। माननीय मंत्री जी ने दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया। जिस देश में कर्ण से दानी और शिवि-दधीच-से दयावीर हुए, उसी पवित्र भारत भूमि में माननीय मंत्री-जैसे दया-धर्म, न्याय-नीति के पालक क्यों न हों। सो, हे प्यारे बालको, तुम भी मंत्रीजी के समान दया-धर्म न्याय-नीति के पालन-हार बना। अपने पुरखों का नाम बढ़ाओ।

"हाँ-हाँ, नानी, हम तो दया, धर्म पालन करेंगे।" बालक चिल्लाये।

नानी ने फिर कहना शुरू किया, सुनने वालों का भला अड़ोसी-पड़ोसी का भला और सब के पीछे अपना भी भला। और हे मेरे प्यारे दुलारे बच्चो, जो न्याय-नीति की कहानी सुने-सुनावे, उसे परमिट मिलने में परेशानी न हो। घर में डालडा के डिब्बों का ढेर लगा रहे, राशनकार्ड खो जाय, तो बनते देर न लगे। और हे प्यारे बालको, मन में आशा हो, भगवान पर भरोसा हो, सरकार पर श्रद्धा हो, और इस कथा को प्रेम से सुने-सुनावें तो सामान ढोने के लिए वैगन मिलने में देर न हो। क्योंकि यह कथा रेलविभाग के मंत्रीजी के दया-धर्म की है, इसलिए हर एकादशी को जो इसे सुने तो यात्रा में मुसाफिरों के धक्के-मुक्के सहने न पड़ें। परमात्मा की वह माया हो कि थर्ड क्लास में भी जगह होती चली जाय। जो आदमी, इसे हर पूरनमासी को सुने-सुनावे, तो कभी नौकरी से अलग न किया जावे! जो नास्तिक इस कथा से अरुचि रखे,

इसका अनादर करे, वह निश्चय ही लुटनी में आजाय—उसे रेल-यात्रा में कभी सुख न हो। अच्छा, बेटो, मैं अब चली। तुम आराम से सो रहो। और हाँ, कहानी कैसी लगी ? 'बहुत बढ़िया—बहुत बढ़िया।' बालक चिल्लाये। नानी उठकर अपने कमरे में आ गई !

★

: ६ :

रोगी का इलाज

गरीब के जीवन का ढांचा कुछ संयोगों और अकस्मातों की डोर से बंधा है। यदि ये अनाशित और आकस्मिक घटनाएं सहारा न दें, तो कभी का ढेर हो जाय। जीवन की ऊबड़-खाबड़ पगडण्डी पर कुछ संयोग साथी बन गये, तो यात्रा की पीठ पर और दो-चार पग बढ़ गये, नहीं तो लड़खड़ा कर एक तरफ लुढ़क गये। गरीब का विवाह-शादी, नाता-रिश्ता, व्यापार-रोजगार ही नहीं, छोटे से छोटा काम भी संयोग की सहायता, भाग्य के भरोसे या दैव की दया पर निर्भर है। जब भूख सताती है, तब नहीं; जब कभी पल्ले पड़ जाय, तब वह रोटी खाता है। इसी प्रकार बड़ी-बड़ी 'चालों' में रहने वाले, जब प्रकृति परेशान करे, तब नहीं; जब भी मौका हाथ लग जाय, तब संडास जाते हैं। जिस बिल्डिंग में हजारों आदमी हों, और इकाइयों में संडास, तो संडास की सुबह वेला में लम्बी लाइन लगना परम स्वाभाविक है।

पंडित दीनानाथ मिसर भी कब्ज़ के पुराने पालक—अजीर्ण के आजन्म-अभिन्न मित्र। मिल में काम करते हुए बाल काले से गोरे हुए, और गोरे होकर खोपड़ी को कभी का उजाड़-ऊसर, कल्हड़ बना सदा के लिए बिछड़ चुके। मिसर जी पुराने मुंशियों में से हैं, जिनका मजदूरों पर भी थोड़ा-बहुत प्रभाव है। यों ही जरा कमरे से झांका तो संडास-पथ बिल्कुल साफ—निर्जन, निर्बाध, निष्कण्टक। बम्बई में ऐसे शानदार मौके पुण्य के फल ही समझिये। मिसर जी प्रसन्न। हे दयासिंधो,

दीनबंधो, आज तो ··! परमात्मा का धन्यवाद कर जल्दी-जल्दी चाय गटक, बीड़ी सुलगाई और फिर लोटा उठा, संडास की तरफ भागे, आशा और उत्साह से टंकी की जंजीर खींची—टननटट···टननटट···! टंकी में पानी कहां ? बड़े झल्लाये। दिल ही दिल मकान-मालिक को चार-छः खरी-खोटी सुना, स्वयं ही चार-पांच लोटे पानी डाला।

नल से लोटा भर, संडास में जाने को हुए तो एक पड़ोसिन, सक्खोबाई, रात की मुसी हुई चोली संभालते हुए नल पर आ गई। मचले पड़ते, रपटते, हठीले यौवन-धन को संभालते हुए लजीली मुस-कान से बोली, 'मिसर जी, संडास चले ?'

मिसर जी मुसका-भर दिये। उनके मुख की रूखी सरबटों में बूढ़ी कामना की रसीली चमक कौंध गई।

'आज तो मैदान साफ है, नहीं तो रोज देखते ही हैं···।'

'हां, आज तो परमात्मा की दया से···।' चोली में फंसी बूढ़ी पुत-लियां निकालते हुए मिसर जी बोले। मिसर जी आधा मिनट ही नल के पास ठिठके रहे होंगे कि वार्त्तालाप छोड़, जो देखा, संडास का दरवाजा बन्द। आग-बबूला हो गये। तिड़क कर बोले, 'कौन नालायक जा मरा भीतर ? क्या मजाक समझ लिया। देखा, यानी कैसे-कैसे जानवर···! आदमियत रही ही नहीं। आधा मिनट भी तो नहीं हुआ तुम से बात करते। पाजी कहीं का ··।'

बाई कुल्ला करती जाती, मुसकाती जाती और सिर हिलाते हुए मिसर जी का समर्थन करती जाती। कुल्ला कर वह मुसकान-भरी पुतलियों से सहानुभूति दिखा कर चली गई।

इतने में दरवाजा भी खुल गया। मिसर जी बिगड़ कर बोले, 'क्या करते थे एक घण्टे से ? जा घुसे। आदमी हो कि···यहाँ डेढ़ घण्टे से खड़े टाप रहे हैं···आप वहाँ भीतर जैसे सो रहे हों।'

'हाय-हाय ! इत्ता जुल्म ! हे भगवान, यह धरती-आसमान कैसे खड़ा है ।' वह बोला ।

'भगवान—हे भगवान ! जैसे धरती आसमान को तू सभाले है ! आया बड़ा फिलासफर·····! हम तो १०-१० लोटे पानी डालकर साफ करे और जनाब भीतर घुस जायं !'

'तो मिसर जी, माफ करो । इतना क्रोध क्यो ? थोड़ी देर में मैं भी संडास जाऊंगा, आप भी पहले उस में घुस जायं···बस···अब तो खुश !'

'जैसे मुझे कोई काम ही नही·····! तुम जैसा बेकार तो मैं नही । यानी आपका तर्क तो देखिये···!' मिसर जी मुँह बिगाड कर बोले ।

इतने में एक और आदमी संडास की तरफ बढ़ा, तो मिसर जी चिल्लाए, 'अरे···अरे, तुम भी···अजीब आदमी हो···यानी हम तो··· क्या खूब ! लो एक और आये यह नये शौकीन !'

मिसर जी झपट कर संडास मे घुस गये । जल्दी में तो थे ही, रपटते-रपटते बचे । बड़े भिनभिनाये, "जानवर कही का ! पाजी ने ऐसी कुशकुनी की कि सिर फूटते-फूटते बचा । बेवकूफ, गंदा ! आज तो मौका मिला था । आ घुसा नालायक, सिर खील-खील हो जाता । भंगी भी साला हराम की खाता है । और इन कार्पोरेशन वालो की बला से, कोई मरे या जिये । यानी कभी देखने तक नही आता कोई । अभी सिर दीवार से टकराया होता ।"

अभी क्रोध की गर्मी जरा नीचे उतरी ही थी कि किसी ने धमधम दरवाजा पीट डाला । मिसर जी झल्ला उठे, पर संडास में बोलना धर्म, नीति और सभ्यता के सरासर विरुद्ध । मन ही मन बड़बड़ाते हुए उठे, 'तुम्हारा सत्यानाश हो ! एक मिनिट भी शांति और सुख से न बैठने दिया । आज ही मरने को थे सब । कम्बख्त भालगोटा खाकर सोये थे क्या !'

मिसर जी भिनभिनाते, झल्लाते, बड़बड़ाते बाहर निकल आये।

रास्ते में बाई ने कुशल पूछी, 'आज तो तबीयत खुश हो गई होगी। खूब मौका हाथ लगा!'

'तुमने ऐसी नजर लगाई कि···और इस चाल मे रहने वाले आदमी हैं, कि सब जानवर। कोई लगा दरवाजा पीटने। क्या मजाल कि आदमी दो मिनिट भी···" मिसर जी पराजित मुसकान से बोले।

बाई ने हीं-हीं कर दाँत निकोस दिये। मिसर जी बोझ-लदे से अपने कमरे में आ गये। गोकुलदास पहले से ही कमरे में बैठे 'दैनिक लोकशाही' में उलझ रहे थे। मिसर जी आये तो सिर उठा, मुसकाकर प्रणाम किया। मिसर जी उदासी-भरी दृष्टि उधर फेंक, काम में लग गये। लोटा एक तरफ पटका। क्रोध में खूब साबुन रगड़-रगड़ कर हाथ धोये। गोकुल उनकी तरफ प्रश्नवाचक भाव से देखता रहा, पर मिसर जी ने उधर बिना कुछ ध्यान दिये, बीड़ी सुलगानी शुरू की। दियासलाई की तीली रगड़ी; तैश में तो थे ही, टूट गई।

गोकुल कनखियों से जब-तब मिसर जी की ओर झाँकते हुए पत्र पढ़ने का बहाना करता रहा। मिसर जी उधर बीड़ी सुलगाने के सकाम कर्म में जुटे रहे। बड़बड़ की आवाज-सी आई। गोकुल ने सिर उठाकर देखा तो राधेलाल और नरेशचन्द्र बहस करते हुए उधर ही आ पहुँचे।

'बधाई, गोकुल भाई! हैदराबाद की जीत पर···!' राधेलाल ने आते हुए कहा।

'बधाई इसलिये भी कि निजामशाही का बाल बाँका तक न हुआ।' नरेश ने व्यंग किया।

'कुछ भी हो, हैदराबाद का तमाशा रहा खूब!' गोकुल ने दोनों की बात को यों ही उड़ा दिया और परोक्ष रूप से काँग्रेस की प्रशंसा भी कर दी।

लेकिन तीनों ने मुसकाकर जब मिसर जी की ओर देखा, तो उन्होंने

निर्भाव उदासीनता से तीनों पर रपटती हुई दृष्टि डाल फिर दियासलाई रगड़ी। वह फिर टूट गई।

'क्या खबर है, मिसर जी ? बैठो, राधे भाई।' नरेश पास ही बैठते हुए बोला।

'देख ही रहे हैं...।' कह मिसर जी ने जब फिर कर्रे हाथ से तीली रगड़ी, वह इस बार भी टूट गई। मिसर जी भिन्ना गये, रोष में बरस पड़े, 'साले दियासलाई बनाते हैं, या जेबें काटते हैं ? चोर कहीं के! देखा, यह हाल है...।'

'लाइये,' कह नरेश ने उनकी बीड़ी सुलगा दी।

'यह सब पूंजीवाद का पाप है। जब तक पूंजीवाद जिन्दा है, हमें इन सब परेशानियों-बरबादियों का शिकार होना ही पड़ेगा। समाज में जब तक आर्थिक विषमता है, तब तक दियासलाई अच्छी बन ही नहीं सकती। इसका तो एकमात्र इलाज है—मजूरों का राज्य। फिर देखें, दियासलाई कैसे खराब बनती है।' नरेश ने रोग का निदान भी कर दिया और औषधि भी बतादी।

'भला बतलाइये तो। आपने देखा, पाँच तीलियों में एक तीली जली। गरीब आदमी क्या ऐसी की तैसी बीड़ी पिये,' मिसर जी कश खींच कर बोले।

'तभी तो गांधी जी कहते हैं, बीड़ी पियो ही मत। न बीड़ी पियोगे, न तीलियाँ टूट कर आपको तंग करेंगी,' गोकुल ने कहा।

'वाह-वा-वाहवा! रोटी खाओ ही मत। कपड़ा पहनो ही मत। भूखे मरो, नंगे फिरो...' मिसर जी बोले। बीड़ी पीते रहने पर भी पेट में दर्द होने लगा। रात खाना भी तगड़ा खाया था, संडास अभी गये नहीं।

'वाह गोकुल भाई! कमाल कर दिया। जीवन की स्वाभाविकता को यों ही उड़ा सकते हो ? सब गाँधी जी कैसे बन जायें ? आपने भी क्या तर्कहीन बेमौके बात कही...।' राधेलाल ने गोकुल का मजाक उड़ाया।

'लेकिन समस्या की जड़ तो समाज की बनावट में है। जड़ को सींचिये, गोकुल भाई! फैक्टरी-ओनर को क्या पड़ी। उसे तो चाँदी बटोरने से काम। ये रक्तशोषक पूंजीपति! एक गरीब उनकी जेबें भरता रहे, वे ऐश करते रहें। मजूर की झोंपड़ी पर फूंस तक नहीं, उनके कोठी-बंगलों की गिनती करना कठिन। और आजकल आप जानते ही हैं, मैचबौक्स कितनी मुश्किल से मिलती है। हजार मिन्नत करो, अठगुनी कीमत दो, तब कहीं 'ब्लैक' से एक दियासलाई पल्ले पड़े। क्रान्ति से पहले क्या रूस में ऐसा नहीं था? लेकिन अब···दियासलाई की क्या मजाल, जो एक तीली भी टूट जाय।'

'कैसे मालूम कि वहां दियासलाई की तीलियां नहीं टूटती?' गोकुल ने हंसकर पूछा।

'अरे, रोज अखबार तो पढ़ते हो। क्या कोई खबर आज तक देखी इस बारे में। कामरेड स्टालिन और एक मजदूर की दियासलाई बराबर ठीक-ठीक जलती है। अगर इस तरह वहाँ तीलियाँ टूटें तो स्टालिन को पाइप पीना भी मुश्किल हो जाय। सारा रिकंस्ट्रक्शन-वर्क चौपट हो जाय।'

'इंग्लैण्ड और अमरीका से भी तो तीलियाँ टूटने की खबरें नहीं आतीं,' राधे ने हंसकर कहा।

मिसर जी मुसकाते और पेट पर हाथ फेरते हुए नरेश भाई की तरफ देखते रहे। दर्द मीठा हो रहा था।

'राधे भाई, ये देश तो हैं घोर साम्राज्यवादी, ठीक खबरें आने ही कहाँ देते हैं, रूस में ऐसी घटनाएं होती ही नहीं। बात भी तो साफ है। वहाँ हर मजदूर दियासलाई की हर तीली को अपनी समझता है। मशीन के हर पुर्जे का वह मालिक है। फैक्टरी की ईंट-ईंट का वह रक्षक है। जब अपने को नौकर समझता ही नहीं, तो काम अपना समझ कर मेहनत से करेगा। फिर टूटने का सवाल ही पैदा नहीं होता। और यहाँ मामला है उल्टा। मजदूर को फायदा तो मिलेगा नहीं, वह दिल से काम भी क्यों

करे ! यह तो बिल्कुल साइकोलोजिकल है। तो तीलियाँ अपने आप टूटेंगी।' नरेश ने युक्तियाँ दे-देकर अपनी बात पुष्ट की।

'हमारी संस्कृति और जलवायु के लिये रशियन ढंग फिट नहीं बैठता। इन सब कठिनाइयों और बीमारियों का इलाज है उद्योगों का राष्ट्रीयकरण। और यह तभी हो सकता है कि परखे हुए वीर देशभक्त काँग्रेस-नेताओं को अधिक से अधिक संख्या में चुना जाय।' गोकुलदास ने चुनाव-प्रोपेगेण्डा शुरू भी कर दिया।

'बस रहने दो···इन काँग्रेस वालों की बातें भी···! कार्पोरेशन क्या खाक कर रहा है ? काँग्रेस ही सब कुछ है वहाँ भी। आप भी सबेरे-सबेरे क्या बातें ले बैठे···! हँ-हँ-हँ-हँ-हँ-हँ—वाह गोकुल भाई !' मिसर जी व्यंग की झुलसी हँसी हँस पेट पर हाथ फेरने लगे। दर्द कुछ बढ़ता-सा मालूम हुआ। वह तकिये के सहारे अधलेटे-से हो गये।

"इसमें क्या शक !" राधे ने समर्थन किया।

"ना ना, एकदम ऐसा रिमार्क तो न कसिये। आखिर, यह भी तो देखिये, हमारे राष्ट्रीय नेताओं के सामने कितनी परेशानियाँ और समस्याएं हैं···।"

"रिमार्क न कसें—आह—चल कर देख लें न संडास की हालत। न टङ्की में पानी, न मेहतर का पता। आखिर, हेल्थ-डिपार्टमेंट करता क्या है ? आकर कोई संडास की तरफ झांकता तक नहीं—आह ! सब मक्कार···हाय—मलखी···!" मिसर जी कहते-कहते दर्द से परेशान हो बिस्तर पर लम्बे-लम्बे हो गये।

"पेट में दर्द होने लगा क्या ? अरे, अभी-अभी तो···?" राधेलाल ने पूछा।

"आह ! यह तो बड़ा तेज हो गया। जरा, गर्म पानी। दर्द न हो तो क्या हो ? संडास हुआ नहीं। गया, तो संडास इतना गंदा·· कय होते-होते···आह !"

'गंदगी का भी कोई ठिकाना है! उफ, गरीब आदमी गंदगी में मरता रहे, मगर क्या पड़ी इन कॉंग्रेस-जनसेवकों को…?' कहकर राधेलाल सिगड़ी सुलगाने बैठ गये। पानी गर्म होने रख दिया गया।

'और क्या। अभी तो ठीक थे—क्या बहुत दर्द है? कम्युनिस्ट शासन से पहले रूस में क्या कम गन्दगी थी? अब संडास के बारे में कोई शिकायत नहीं। चमचमाते संडास! जंजीर खींचो तो बाढ़ आ जाय। क्या स्टालिन, क्या मोलोटाव और क्या एक फैक्टरी वर्कर, सबके संडास समान—शानदार। No differnce at all! जरा झाँक कर देखिये, तबियत फड़क उठे। दिल की कली खिल जाय। अन्दर बैठिये, उठने को मन न करे। यही नहीं, रूस में संडासों में टेलीफोन लगे हैं, रेडियो रखे हैं, टेलीवियन तक मौजूद हैं, ट्रांसमीटर फिट हैं। जिन्दगी की हर आवश्यकता आप…'

'संडास क्या, ये तो रेस्टोरेण्ट हो गये,' राधेलाल अंगीठी को पंखा करते हुए बोला।

'और क्या?' नरेश जल्दी में कह गया। मिसर जी को भी हंसी आगई।

'कम्युनिज्म से अब आशा न करो। रूस में राष्ट्रवाद बनकर कैद है यह तो। और भारतीय कम्युनिस्ट? बस, राम-दुहाई! माफ करना नरेश भाई, सन् ४२ में इन लोगों ने जो कुछ किया…। जब हमारे देश के नेता सींखचों में बन्द थे, जब कौम के सामने जीवन-मरण का सवाल था, जब हमारे देश के नौनिहाल गोलियाँ खा-खाकर…और तब हमारे बंधु कम्युनिस्ट…' मिसर जी का पेट सहलाते हुए गोकुलदास ने कहा।

गोकुल को बीच में ही टोक राधे अंगीठी सुलगाना छोड़कर बोला, 'और क्या! कॉंग्रेसी-नेता जब जेलों में बन्द थे, 'ए क्लास' में कैद थे, तब हमारे सोशलिस्ट नेता जान हथेली पर रख, देश में से विदेशी राज्य की जड़ें उखाड़ने में लगे थे। सन् ४२ का आन्दोलन समाजवादियों ने

चलाया। उस वक्त कम्युनिस्टों ने हमें गिरफ्तार तक कराया। कम्युनिज्म तो अब हठधर्मी और कट्टरपन बन गया है—पक्का टोटेलिटेरियन! कम्युनिस्ट तो रूस के एजेण्ट हैं और कांग्रेसी पूंजीपतियों के हाथ की कठपुतली।' राधेलाल ने एक ही बार में दोनों को पछाड़ दिया।

गोकुलदास कांग्रेस पर यह आक्षेप भला कैसे सहन करते। मिसर जी का पेट सहलाना छोड़, तुरन्त उत्तर दिया, "बिल्कुल झूठ। सरासर गलत दोषारोपण। बदनाम करने की कोशिश। जिन्होंने जीवन भर तपस्या की, वे भला···?'

'यहीं देखिये, पूंजीपतियों के संडास कैसे साफ चमचमाते। रगड़-रगड़ कर लक्स और हमाम से धोये जाते हैं और आपकी टङ्की में पानी तक नहीं। भालावार हिल पर इतना ऊंचा होते हुए भी पानी के फव्वारे चलते हैं और यहाँ इतना नीचे पर भी नल बूंद-बूंद टपकता है। आज समाजवादी हुकूमत होती, तो देश का नक्शा कुछ और ही होता।'

उधर अंगीठी बिना सुलगे ही बुझ गई। जब समाजवादी हुकूमत नहीं, तो अंगीठी भी जल कर क्या करे? मिसर जी का दर्द और भी बढ़ने लगा। वह दर्द से कराहते हुए बोले, 'पानी गरम हुआ क्या? हाय! गरम पानी के साथ 'पंच सकार,···'

'नरेश भाई, जरा···' कह राधेलाल मिसर जी को संभालने लगा। नरेश ने जल्दी-जल्दी अंगीठी में कागज लगाये। उनको जला पंखा करना शुरू किया। मिसर जी हल्के-हल्के लगातार कराहने लगे। गोकुल सिरहाने बैठ गया।

'धीरे-धीरे सब ठीक हो जायगा। जरा हृदय कड़ा रखिये। कांग्रेस-सरकार अब 'फ्री मैडिकल एड' की योजना बना रही है···क्या बहुत दर्द है?' गोकुल ने कहा।

'कांग्रेस तो कर चुकी, जो करना था। अब तो नेताओं के बंगले बन रहे हैं। मोटी-मोटी तनख्वाहें मार रहे हैं। घबराइये मत, अब ठीक

हुए। समाजवादी-दल का शासन हुआ कि देश स्वर्ग बना। पानी के साथ 'पंच सकार' खा लीजिये। कहाँ रखा है, निकाल दूं ?' राधे ने पूछा।

मिसर जी ने टूटी मेज की तरफ संकेत किया। राधेलाल दराज में चूरन तलाश करने लगा। अंगीठी पंखा करते हुए नरेश बोला, "बीमारी तो समाज की गलत, अवैज्ञानिक और मूर्खतापूर्ण बनावट में है। दर्द केवल मिसर जी का नहीं, पूरे समाज का है। पाप तो है आर्थिक विषमता—पूंजीवाद और इसका इलाज है कम्युनिज्म! जियो और जीने दो—और बराबरी के साथ।"

"तभी तो मास्को-ट्रायल में कामरेड स्टालिन ने उन साथियों को गोली से उड़वा दिया।" राधेलाल ने व्यंग किया।

नरेश भला स्टालिन पर यह अभियोग कैसे सह सकता, तुरन्त अंगीठी छोड़, जवाब देते हुए आ खड़ा हुआ, "ऐसे देश-द्रोहियों के लिये इससे भी कड़ी और बड़ी सजा भी कम! जो लोग हमारे क्रांतिकारियों की कुरबानी को बेचना चाहते हों, जो हमारे निर्माण को नष्ट करने पर तुले हों, उनको शूट न कर दिया जाय तो और क्या? मालूम है, ये लोग सोवियत रूस को अमरीका और इंग्लैण्ड के हाथ बेचे डाल रहे थे।"

इधर नरेश कम्युनिस्ट रूस पर लगाये गये अभियोग का उत्तर देता रहा और उधर अंगीठी में लगाये गये कागज धुंआ बन कर ही रह गये। मिसर जी दर्द से कराह रहे थे और तीनों देशभक्त अपनी-अपनी युक्तियों से यह साबित करने में लगे थे कि दर्द की जड़ तो उनकी पार्टी की सरकार बनने से कटेगी। मिसर जी ने चिल्लाना शुरू किया—'हाय! आज किसका मुँह देखा था—ओह! गर्म पानी फर दें तो चूरन···'

मिसर जी का कराहना सुन पड़ोस से सक्खोबाई भी आ गई। देखा, मिसर जी बिल्कुल बेहाल।

'अरे! तबीयत कैसी? अभी-अभी तो···।' सक्खोबाई ने विस्मय से कहा।

'दर्द होने लगा···अभी तो बिल्कुल ठीक थे। अभी ठीक हुआ। गर्म पानी के साथ···।' गोकुल ने कहा।

बाई अंगीठी के पास गई तो देखा पानी जैसे का तैसा रखा है—ठण्डा ओला।

'सिगड़ी तो बुझी पड़ी है—जलती ही नहीं। साहब लोगों के बस का यह काम नहीं,' कहकर वह अंगीठी जलाने बैठ गई। उसे क्या देर लगती। इधर ये तीनों नेता लोग मिसर जी को शाब्दिक धीरज देते रहे और उधर बाई ने पानी भी गरम कर दिया। वह प्याले में पानी गरम करके लाई तो गोकुल ने झट उसके हाथ से प्याला ले लिया। राधे ने एक कागज पर थोड़ा-सा चूरन रखा और नरेश ने मिसर जी को उठा भी दिया। तीनों ने मिलकर उनको चूरन खिला, पानी पिला दिया। वह फिर लेट गये। राधेलाल पेट सहलाने लगा और बाई नर्स की तरह इस डाक्टर दल की आज्ञा में खड़ी रही।

चूरन तो मिसर जी पर जादू का-सा प्रभाव करता ही था। तीन-चार मिनट में ही पीड़ा आधी रह गई।

'कुछ ठीक हुआ?' बाई ने मुसका कर पूछा।

'अब तुम्हारा हाथ लगा तो···।' नरेश ने हंसकर कहा।

यह समझ कि अब आराम है, बाई मुसका कर चली गई। मिसर जी थोड़ी देर में ही बिल्कुल ठीक हो गये।

'अब कैसा है?' राधे ने पूछा।

'अब तो बिलकुल ठीक है।' मिसर जी बोले।

'चूरन तो गजब का है!' गोकुलदास बोले।

'हाँ, जब कभी संडास में गड़बड़ी हुई कि एक फंकी ले ली,' कहते हुए मिसर जी ने एक बीड़ी सुलगाई।

'समस्या सिर्फ मिसर जी की नहीं, पूरे समाज की है। जिम्मेदार आदमियों के हाथ में प्रबन्ध रहे, तो इतना कष्ट न हो। शहरों में पेट

किस लिये खराब रहते हैं ? इसलिये कि चालों में आदमी अनन्त हैं और संडास कम। समय पर जा नहीं सकते। हाजत मर जाती है। यही बीमारी की जड़ है।' नरेश ने फिर बात चलाई।

'और क्या—बिल्कुल यही !' मिसर जी बोले।

'यह तो आपके हाथ में है, वोट उसे दीजिये जो आपके प्रति ईमानदार हो। जिसे देश का ध्यान हो, अपना स्वार्थ न हो।'

'जो गरीबों और मजूरों का मित्र, सखा, सेवक और सहायक हो।'

'हुँ।' मिसर जी अंतिम कश खींच, पहली बीड़ी फेंक, दूसरी जलाते हुए बोले।

'इस बार मजा आयगा। क्यों मिसर जी, समाजवादियों को क्यों न भेजा जाय, नया खून है ?' राधे ने कहा।

मिसर जी बीड़ी पीते हुए पेट पर हाथ फेरते रहे। बीड़ियों ने धुंआधार कर पेट में हलचल मचा दी। चूरन भी उथल-पुथल कर रहा था।

'लेकिन कम्युनिस्टों के बराबर काम की धुन तो शायद ही किसी में हो। क्यों मिसर जी ?' नरेश ने अपनी बात सामने रखी।

चूरन का असर, गर्म पानी की मदद और बीड़ी की कोशिश—मिसर जी के पेट में तूफान-सा उठा। बातें सुनी-अनसुनी कर शीघ्रता से लोटा उठाया। पैरों में चप्पलें डालीं।

'तो फिर मिसर जी···कांग्रेस को ?'

'मेरा तो विचार···।'

'हूँ-हूँ' कह मिसर जी चप्पल घसीटते हुए संडास की तरफ भागे। तीनों देश-हितैषी चुनाव-प्रचार करते ही रह गये।

★

: ७ :

प्राइवेट पत्र

जुहू रोड

बम्बई १४

नन्हें,

तुम भी अजीब आदमी हो। किस बुद्धू ने सम्पादक बना दिया तुम्हें ! मेज पर बैठे कलम चला दी—नादिरशाही आदेश दे डाला, 'लौटती डाक से एक बढ़िया कहानी भेजो।' जैसे कहानी लिखना खेल हो; कहानी न हुई, बाबाजी की भभूत हो गई, जो भी आया उठा कर चुटकी-भर दे दी। न भेजूं, तो भी जीना कठिन। दुनिया-भर में बदनामी करोगे, टेढ़ी-तिरछी चिट्ठियां लिखोगे—त्याग-पत्र दे दूँ, पत्र बन्द कर दिया जाय। तनिक भी सहायता नहीं करते और न जाने क्या-क्या ऊटपटांग ··· ··· साफ कहे देता हूं (मैं इस वक्त बहुत झल्लाकर पत्र लिख रहा हूं।—तुमसे कहता हूँ, उसी रूप से अनुभव करो) और तुम्हारी भाभी के मारे अलग नाकों दम। न इस करवट चैन, न उस करवट! लेखक क्या बन गया आफत मोल ले ली और शादी क्या करली पैरों में बेड़ियाँ पड़ गईं! कहानी लिखने बैठा कि क्या...कहूँ! ऐसे में कहानी लिखी जाती है कहीं? मुसीबत!

तुम्हारा पत्र मिला साढ़े बारह बजे के आस-पास। खाना-खिलाना समाप्त कर तुम्हारी भाभी गप-शप करने पर आमादा हो गईं। मैंने अनुनय की कि सर न खाओ-खपाओ। काम है, बहुत आवश्यक और

बहुत अधिक, समय बहुत थोड़ा है। वह तो एकदम तुनक कर बोली, 'जहाँ दो मिनट बातें करना चाही कि फटकार पड़ने लगी। मैं इतनी बुरी लगती हूँ क्या... ?' मैंने उसे प्यार से समझाया—बात असल यह कि तुम इतनी सुन्दर हो मेरी प्राण, पास बैठी तो देखता रह जाऊँगा, सारा काम चौपट। वह एकदम बिगड़ खड़ी हुई—तो किसी अप्सरा को बैठा कर बातें किये जाइये। और वह फुर्ती से उठ कर नाराज़ी के वेश में पिछले कमरे में सोने चली गई।

मैंने कलम-कागज संभाल, दिमाग की कलें मरोड़नी आरम्भ कीं। हास्य लिखूं, करुण लिखूं, रोमांस लिखूं—कुछ भी हत्थे नहीं चढ़ पाया। आँखें बंद कर, बुद्धि की खिड़कियां खोल, कल्पना के आसमान में झाँकने लगा। अंधेरे में बहुत टटोला; हाथ कुछ न लगा। कहानी लिखने की बेताबी, और यहाँ खोपड़ी दिवालिये की तीजोरी की तरह खाली! बिना प्लाट भी प्लौट में डूबने लगा ही था कि खट से किवाड़ खटके। चौंक कर पलकें उठाईं—मिस नीलम तशरीफ लाईं। चमकतीं आंखें, सुकुमार पग-चाप, रोमांचित-सी देह और सतृष्ण कटाक्ष!

खीज तो बहुत आई—कहानी का सत्यानाश हो गया। लेकिन वह प्यार बहुत करती है। चाहने पर भी नाराज न हो सका। मुसकाकर उसकी तारफ देखा। वह मौन प्यार से पास-ही पलंग पर बैठ गईं। मैंने सस्नेह उसकी कमर पर हाथ रख दिया। वह रोमांचित हो पास सिमट आई—बिलकुल वक्ष से सट गईं। मैं रोमांटिक मूड में तो था ही, लगा उसकी भूरी आंखों में आंखें डाल, कहने, ओह नीलम, काश तुम समझ पातीं! काश तुम समझ पातीं मेरी बेताब धड़कन को—तुम अनुभव कर पातीं मेरे प्रेम की गर्मी को···एक बार भी, मेरी प्यारी नीलम, तुम्हारी मूक वाणी यदि 'हाँ' कह देती।

मैं फिर प्रेम-विकलता से छटपटा कर बोला, 'तुम्हारा सुकुमार स्पर्श—रोमांचित आलिंगन—कितना स्नेह और भावनामय! चाहता हूँ, तुम्हें

एक बार कसकर वक्ष में लगा लूं। नीलम, ओह···सुकुमारी—भावनामयी, प्रेम-चातकी, रोमांचवाहिनी···। भावावेश में जो मैं उसे वक्ष से लगाने लगा, वह मछली सी बाहुपाश से रपट कर दरवाजे से बाहर। प्रेम-झिलमिल कटाक्ष फेंक, पकड़ के पार। उसकी शरारत पर मुग्ध-सा मैं ताकता ही रह गया।

(जानते हो न मिस नीलम को, जिसे तुम प्यार से बगल में कस लिया करते थे!)

वह मेरे आकुल कलाकार के हृदय में चंचल प्रेम जगा गई। रास्ता मिल गया। कल्पना की पूंछ पकड़ प्रेम-कहानी के पीछे दौड़ने लगा। पहले तड़पता-फड़कता एक प्रेम-पत्र लिख डाला—'आह' तुम मेरी प्रिये, खोलो न मानस-निकुंज द्वार। आज तुम्हें पाकर भी···आह! बीच में अन्तर की दीवार अचल! रानी, वह केसर-सा मन और केतकी-सा तन। मेरी प्राण, तुम रश्मियों की जाली, मानस की मराली! कल्पना-चुम्बनों से विह्वल, वेदना से बेताब। आहों-सी, उच्छ्वासों-सी और न जानें क्या-क्या-सी। हम मिले, प्यारी, जीवन-गगन में मगन मन, मगन तन, नक्षत्र-से—पर, बीच में वह कौन पुच्छल तारा आ मरा! तुम्हारी गोटे-सी झिलमिल याद—जार्जेट-सी रपटती-सरकती स्मृतियां। आज भी मानस-भवन में आह, प्रिये—मेरी प्रिये! बस आह—आह—आह! मेरी प्यासी चाह!

पढ़ कर उछल पड़ा—क्या शानदार चीज बन गई। पढ़ने वाला कलेजा थाम कर बैठ जाय। प्रेम-सुकुमारियां—मुग्धाएं—कलेजे से लगा लें। आशा में खिल उठा! चमकती हुई कहानी निकलेगी हाथ से, पर दुश्मन लिखने दे तब न॥ कहानी में बहना शुरू ही किया था—जोर का शोर मचा। पड़—पड़—पड़पड़—भगदड़।

तुम्हारा बेड़ा डूबे—सत्यानाश कर दिया कहानी का। हड़बड़ा कर उठा, कागज-कलम पटक बाहर गया। देखा, सामने विंसेण्ट रोड पर

पत्थरबाजी हो रही है। धर्म-दुर्ग की रक्षा के लिये लोग एक बिल्डिंग की खिड़कियों के शीशे तोड़ रहे हैं। गजब का जोश ! पुलिस आई तो उसने हवाई फायर किये। बहादुर भीड़ भाग खड़ी हुई—सरपट ! गर्हा सीने में हिम्मत है, तो टाँगों में भी दम है। धर्म के लिये योंही, आत्म-हत्या करने तो नहीं आये।

कमरे में आया। सोचने लगा, कहानी आगे कैसे बढ़ाई जाय। प्रेम पत्र तो लिखा गया। यही कहानी की गाँठ बने। हो सकता है हीरोइन विवाहित हो। यह भी सम्भव है, विवाह न हुआ हो। कैसी हीरोइन ठीक रहेगी—विवाहित या कुमारी? बड़े धारणा-ध्यान-समाधि के मूड में कहानी का ढाँचा तैयार कर रहा था, तुम्हारी भाभी साहिबा (प्रवेश-निषेध होते हुए भी) भीतर आ गईं। लो, एक और नई मुसीबत। अब लिखी जा चुकी कहानी !

तुम्हारी भाभी पर गुस्सा तो बहुत आया और झुंझलाहट छूटी। खाक-पत्थर लिखी जाय चीज—विघ्न पर विघ्न—बाधाओं पर बाधाएं। प्रेम की निवाई-निवाई मिठास नसों में बहनी शुरू ही हुई थी कि बर्फीली हवा की चपेट लगी। मिजाज ठंडा—मजा मिट्टी। फिर भी किसी प्रकार मैंने अपने को संभाल मुसकराते हुए कहा, 'अरे उन्निद्र रोग तो नहीं हो गया। पाँच मिनट भी तो नहीं सोईं। भरी जवानी······में नींद की कमी! यानी तुम्हें तो ऐसे सोना चाहिए कि नगाड़े भी बजें तो··· ···। कभी तो कुम्भकर्ण की तरह सो जाया करो।

वह न बोली, और उसने उदासी-भरी अधकचरी जमुहाई ली। मैंने फिर कहा, नींद आँखों में ऊंघ रही है। जाकर सो रहो। नींद न आने से······। वह उदासी से बोली, 'तुम चाहते हो मैं सोती रहूँ, और तुम यहाँ······।'

'मेरी चिन्ता मत करो' अगर नींद कम आयेगी तो······।' मैंने समझाया, लेकिन वह जरा बदले हुए स्वर में बोली' 'यह नहीं हो सकता ······! मैं सोती रहूँ और श्रीमान् जी यहाँ मनमानी······' मैंने बीच

में ही बात काट दी, 'मनमानी मेहनत करतें रहें ! जरा भी नहीं—लिखने में ज़रा भी मेहनत नहीं। खैर, अगर यही बात, तो एक प्याला काफी तैयार करदो और तुम दो तीन घन्टे के लिए कहीं बाहर·····आज एक कहानी·····। बड़ा व्यस्त हूँ।'

'यह मैं सब समझती हूँ कि कहानी लिखी जा रही है या ·····।'

'या निबंध—बिलकुल ठीक। एक शिक्षित पत्नी से यही तो आशा की जा सकती है। खैर, अंगीठी जलाने से सुस्ती उतर जायगी।' कोई 'बुरा सपना देख लिया क्या ?'

'सपना नहीं, प्रत्यक्ष देख रही हूँ। इतनी पागल न समझो। वह जैसे लड़ाई की चुनौती देने लगी हो !' 'प्रत्यक्ष तो है ही सचमुच—ये दोनों मूर्ख धर्म के नाम पर कैसी मारकाट कर रहे हैं।'

'यह तो प्रत्यक्ष है ही—आप भी आज प्रत्यक्ष हो गये !'

'इसका मतलब ?'

'मतलब—जैसे कुछ जानते ही नहीं ! मैं दिनभर सोती रहूँ या काफी तैयार करके कहीं चली जाऊँ और आप यहाँ रंगरेलियाँ करते रहें। मैं यह सब कुछ सहन नहीं कर सकती। छः महीने से घुट रही हूँ। मैं भी इन्सान की नजर पहचानती हूँ। कहानी लिखनी है—बाहजी, आपकी कहानी !' वह एकदम बरस पड़ी।

'जिस दिन भी काम करना चाहा, झगड़े पर उतारू, आखिर कुछ करने भी दोगी।'

'इसका अर्थ, तुम्हें चाहे जो कुछ करने दूँ ?'

'देखो रानी, धर्म-शास्त्र के अनुसार बहस करो तो तुम्हें सरासर हारना पड़ेगा मनु महाराज साफ कह गये हैं·····वैसे आपसी समझौते की बात दूसरी।' मैंने उसे मौखिक गुदगुदी करनी चाही, पर बजाय हंसने के वह तड़क कर बोली, 'तो मैं भी यह नहीं होने दूंगी। वह कम्बख्त यहाँ आती क्यों है ? और जितना भी मैं तुम्हें मना करती हूँ, तुम मुझे और

जलाते हो। आज मैंने अपनी आंखों से देख लिया। कानों का विश्वास भले न भी हो!'

'कौन आती है? खामखा!'

'वही मिस मेरिया साहब—सेकिण्ड फ्लोर, चौथा कमरा, पेटनकर-भुवन, फाड़के रोड; और बताऊं अता-पता?'

'पागल तो नहीं हो गई? उस बेचारी निर्दोष बाला को·····। यहां कोई नहीं आया।'

'कोई नहीं आया तो किससे घुट-घुट कर बातें हो रही थीं? प्रेम में उबले पड़ते थे। तुम्हारा सुकुमार स्पर्श, ओह! रोमांचवाहिनी—सुकुमारी प्यारी! प्रेम की कहानी। यह सब किससे हो रहा था? किसे छाती लगा रहे थे? ओह—ऊह। आह—वाह! क्या आहें-कराहें की जा रही थीं? क्या प्रेम का अभिनय हो रहा था। मैंने स्वयं देखा, मिस मेरिया थी!'

'तो मैं भी शर्त लगाता हूँ, मिस मेरिया नहीं थी, और कोई भले ही हो।' मैंने चमकती मुसकान से कह उसे चिढ़ाया।

'हाय, मैं मर गई! तो और भी कोई मेरी सौत! हो भी सकती है, तुम्हारा क्या भरोसा! मैं हार गई कुछ भी कहना बेकार।' एक आह-सी भर, वह अंगीठी सुलगाने लगी।

उसने अंगीठी सुलगानी शुरू की और मैंने तुम्हें यह पत्र लिखना। इसी बकबक-झकझक में पांच बज गये। तुम्हारी भाभी ने ऐसा मूड खराब किया कि बनी-बनाई कहानी बरबाद हो गई, और तुम भी। इसलिए गुस्सा आता है, तुम्हीं ने फंसाया इससे विवाह करने के लिए। यह सहायता मिल रही है साहित्य की प्रगति में। तुम भी अपनी भाभी के बारे में बड़ी-बड़ी डींगें मारते थे। बड़ी शान्त है—बड़ी हँसमुख है, फूल झड़ते हैं, बातें करते हुए। वाह क्या बात!—खूब फूल झड़ते हैं। क्या मुसकान है। कमरे में फूलों का ढेर लगा है।

तुमसे भी दो टूक कहे देता हूँ, इस तरह कहानी के लिए लिखा तो

.....। मजाक समझ लिया ! जब जी में आया, एक कार्ड लिख मारा। इस तरह कहानी लिखी जाती है ! दिन भर खराब हो गया। छुट्टी का दिन यह भी न हुआ— कहीं घूम आता किसी को साथ ले।

और रही तुम्हारी भाभी की तरफ से कुछ भी लिखने की बात, सो जनाब श्रीमतीजी मुँह फुलाये कमरे में धुंआ कर रही हैं। ऐसे बे-मन से कहीं अंगीठी सुलगती है।

बस इतना ही।

१०-४-४८ तुम्हारा—
दीनू

पुनश्च !

लो, एक और मुसीबत। आज तुम्हारी भाभी ने मुझे तंग करने की कसम खाली क्या ? मैंने तुम्हें यह पत्र लिख, लिफाफे में बन्द कर, मेज पर रखा ही था, 'जनाब' अंगीठी छोड़, सामने आ खड़ी हुईं।

'आज काफी बनेगी या नहीं ? मन नहीं है तो, बाहर चला जाता हूँ।'

'बना तो रही हूँ।'

'तुम तो सर पर सवार हो—डेढ़ घण्टा हो गया धुएँ में आँखें फोड़ते हुए। क्या झगड़ा करने की ही ठान ली है ?'

'झगड़ा तो तुम बढ़ा रहे हो।'

'मैं झगड़ा बढ़ा रहा हूँ—या ?

'तो किसे लिखी है यह चिट्ठी ?

'क्या किसी को एक चिट्ठी भी न लिखने दोगी, बने बनाये काम में तो रेह मार दी।'

'मेरे कहने से क्या मान जाओगे खूब चिट्ठियाँ लिखो, प्रेम करो। मैं बाधक क्यों बनूं ? करोगे तो वही, जो तुम्हारे मन में समाई है !'

'आज तुम्हें हो क्या गया है ?

'मैं देख-देख कर कुढ़ती रहूँ और तुम प्रेम के नाटक करते रहो आख़िर सहने की भी सीमा है !'

'अरे क्यों रार खाती हो, कह तो दिया किसी से न प्रेम है न प्राम !'

'तो यह चिट्ठी किसे लिखी थी ? नुम्बनों से विकल—ओहो ! वेदना-सी बेताब—वाहव्वा ! हम मिले जीवन-गगन में नक्षत्र-से, बीच में वह कौन पुच्छल तारा आ मरा । और कोन पुच्छल तारा आ मरा—मैं ही तो हूँवह पुच्छलतारा ? मैं बीच में क्यों पड़ूं ? लो, इसे भी रख दो न साथ में । प्रेम में कमी न रह जाय । मैं पुच्छल तारा ! वाह जी, नक्षत्र साहब !' आवेश मे उसने मोस-मास कर एक कागज मेरी तरफ फेका ।

'अर-र-र-र''''यह पत्र ? यह तुम्हारे हाथ कैसे लगा ? झगड़े में इसे तो भूल ही गया ।' कह मैंने कागज उठा लिया ।

'रख दो न इसे भी पत्र के साथ-साथ । क्यों''''''?' कह उसने उत्तेजना कंपित हाथों से लिफाफा फाड़ डाला । और जल्दी-जल्दी आतुर पुतलियों से पत्र पढ़ने लगी ।

मैं दीवार से कमर लगा, उसका मुंह देखता रह गया । 'किस को लिखा है यह पत्र ?' पढ़ते-पढ़ते उसने पूछा ।

'किसी को भी लिखा हो,—मैंने निर्भाव उत्तर दिया ।

'और मेरे मारे, तुम्हारा क्या नाकों दम है ? जगह-जगह मेरी बुराइयां भरी हैं ।'

मैं चुप रहा । वह तेजी से पढ़ गई ।

वह सहसा खिलखिला पड़ी ।

'हाय, मैं मर गई । नीलम से बातें करते थे ! तुम कैसे हो—बिल्ली से भी प्रेम की बातें ।' वह हंसते हुए बोली ।

'नहीं, मिस मेरिया थी ।' मैंने मुसका कर कहा । तुम्हारी भाभी मुसकाती, झेंपती, दबी हंसी हंसती और पत्र पढ़ती जाती । मैं उसकी

आनन-श्री मे झिलमिलाती रंगीन रेखाओ को देखता रहा। पत्र समाप्त कर उसने मुसकान-डूबी झल्लाहट से उसे मेरी तरफ फेक दिया।

'यह प्रेम-पत्र भी रख दो न इसमे'—मैने उसे चिढ़ाया।

'तुम भी बड़े कोई वह हो! नन्हे बाबू को क्या-क्या झूंठ-सच लिख मारा। हाय वह क्या सोचेंगे?' कह, उसने लजा कर दोनों हाथो से अपना मुँह ढंक लिया। और गद्द से चारपाई पर गिर पड़ी।

अब क्या लाभ? कहानी तो लिखी न जा सकी। तुम दोनों, देवर-भाभी, ठीक। तुम कहानी के लिये तंग करो, और लिखने बैठू तो वह झगड़ा करें। अजीब मुसीबत! अब श्रीमतीजी पास बैठी खी-खी कर रही हैं। भला बताइये तो कहानी की रेड़ लगा दी न।

एक बात और—यह निजी पत्र है, न कि कहानी, कहीं इसे छाप दो। समझे, बुद्धू सम्पादकजी?

तुम्हारा—दीनू

: ८ :

प्रगतिशील प्रेम

चौपाल के चबूतरे पर बैठा पीपलसिंह दनादन गन्ने दरोड़ रहा था। उन्नीसवाँ गन्ना दाढ़ में दबोच झटका दिया ही था कि गन्ना दाढ़ में दबाये फटी-फटी आँखों से ताकता रह गया !---एक लड़की आते दीखी। सिर पर सरसों के साग की पूली, माथे पर लटकते पीले-पीले फूल, झरोखों से झाँकती दो पुतलियाँ···लड़की लचकती-मचकती सामनेसे गुज़री-खनखनन-खनखनन् अनघट, कानों में झूलते झूमके, और सौ-सौ बल खाते···परों से लिपट-लिपट जाते···अंगूरी घाघरे के घूम ! अगली गली में मुड़ी, तो ठिठक, कनखियों से पीपल की ओर झाँका—पीपल 'आह' करके रह गया ! भक्का-सा लगा—इक्का-बक्का, भौचक्का ! गन्ना एक तरफ फेंक, घायल-सा दिल हाथ से दबाये, चौपाल में आ, पुआल के गद्दे पर लुढ़क रहा—हाय गोरी, यह बरजोरी !

रोटी का पहर। रोटी परोस, थाली ले, मौसी भीतर आई। हालत देख दाँतों-तले उंगली दबाई। पीपलसिंह मन-मलीन, तन-छीन, अति-दुर्बल दीन, हाल बेहाल—बड़ी निढाल। मौसी ने थाली सामने सरकाई। सरसों का साग मक्की की रोटियाँ—दोआबा के जाटों की जीभ भी ललचा जाय ! पर पीपलसिंह गुमसुम पड़ा रहा। मौसी का माथा ठनका। वह मन ही मन तड़प कर बोली—हाय, खेड़े वाला कनकटा तो मेरे बीरन के पीछे नहीं पड़ गया ? हाय मेरे लाल को सिंघाड़िया झील की डायन

ने तो नहीं धर-दबोचा ! हे भगवान, पराया पूत । बुढ़ापे में कालिख !

'हाय, मैं मर गई ! सुबह तो बिलकुल हट्टा-कट्टा था—बात की बात में बीस गन्ने फाड़ डाले । अब क्या हो गया ?—थाली को सूंघता तक नहीं !' मौसी सिर पर हाथ फेरते हुए बोली ।

पीपलसिंह फटी-फटी उदास आँखों से उसकी ओर ताकता का ताकता रहा ।

'तैनूं की हो गया, वे पुत्तर ? किस निगोड़े एक आँख के काने की डीठ लगी—उसकी आँखों में नून-मिर्च डालूँ । हाय-हाय क्या से क्या हो गया, मेरे बछड़े ।'

'आह—मौसी !' पीपलसिंह ने गिड़गिड़ाते हुए मौसी के पंजे पकड़ लिये ।

'मेरे बीरन, कह तो, तुझे क्या हुआ । किस सयाने को बुलाऊँ ? किस ओझा से झाड़-फूँक कराऊँ । सुबह तो·····हाय !' -मौसी दुख-भरी बोली में बोली ।

'मौसी—मौसी, अब जीना मुश्किल । हाय·····मौसी !' पीपल ने मौसी की लाते पकड़े-पकड़े ही कहा, बड़ा लुसा-सा मुँह बना कर ।

'हाय, मेरे कान फूटें—ऐसी भाखा ना बोल मेरे हीरन ! अब चंगा हुआ—अब चोकड़ी भरता खेतों में फिरेगा—मैं मर जाऊँ, हाय, मेरे लाल ।' कहते-कहते मौसी ने कानों में ऊँगली दे ली ।

'ओह ! हाय, मौसी·····मेरी मौछी !' कह पीपल ने थकासी-सी साँस छोड़ी ।

'बेटा, अपने जी की तो कह—सोई जतन करूँ ।' मौसी ने प्यार से पूछा ।

'मौ·····मौ·····जी·····जब जबेरे·····जब गन्ने

चबा रहा था·····हाय, मौजी मैं मर गया। यह कह पीपल भार-खाते बैल की तरह 'बैं-ब'·····कर उठा।

'तब—तब, क्या हुआ लल्ला ?'

'तभी वह गाँव की गोरी·····बिल्ली-सी आँखें चमकाती·····कुम्हार के चाक-सा घाघरा घुमाती, धोबी के पाट-सी कमर लचकाती, जुगाली करती कटिया-सी मदभरी चाल दिखाती·····हँसिया-सी भवें और हथौड़े-सी मुट्ठियाँ·····लोमड़ी-सी होशियार मेरे चूहे-से दिल को दबोच ले गई। आह·····मौसी·····आह·····मौसी !' पीपल छटपटाता-सा बोला।

'हाय—मैं मर जाऊं ! तड़के-तड़के वह·····वह निगोड़ी बेदर्द···हाय, वह जो सरसों के साग की पूली·····!'

'हाँ, वही—वही।'

'वह गेंदा !···गेंदा पधान की इकलौती लौंडिया, हाय, किस कुबख़त मैंने तुझे पौंडे मरोड़ने बैठाया ! पधान को पता चले, तो गाँव में रहना भारी। वह रूठे, तो गाँव में कोई चिलम के लिये अँगारा भी न दे। वह गुस्सा करे, तो बीसों कोस तक खेत निराने को मजूर भी न मिले—कोई करवाला तक न छूने दे ! हाय, मैं मर जाऊँ·····मेरे लाल तूने जे क्या कर लिया !" मौसी ने पीपल को डराया-धमकाया। पर पीपल ने भी आन के लिये प्रण सुनाते हुए कहा, 'तो मौसी, मैं भी जो गेंदा ना पाऊँ, तो गले में जेबड़ी बाँध कर गद से लटक जाऊँ।

'किसने तुझे यह पट्टी पढ़ाई ? हाय किस निगोड़े ने मुझसे वैर निकाला !·····उसकी आस छोड़ मेरे भोले—मेरे वीरन ! बीसों गबरू जवान उसके ढोरों को कुट्टी काट-काट कर मरे—अनेक उसकी भैंसे चरा-चरा कर हारे—कितने ही उसका धान साफ़ करते-करते पागल बने, पर उसे कोई न पा सका। हठ छोड़। जान मत गंवा बेटा। रोटी खा—मजे से दण्ड पेल-पेल दिन बिता, बेटा !' मौसी ने उसे समझाया।

'मौसी तेरी लातों की सौगंध—बिन गेंदा न तो सरसों का साग सुहावे, न मक्की की रोटी मन भावे। जी में आवे है कि सिंघाड़ों के डहर में डूब कर जान गंवादूँ!' अडिग वाणी में पीपल बोला।

'तो बीरन, जो अन्न न सुहावे है तो दो-तीन सेर सिंघाड़े या गाजरें ही चबा डाल! तेरी मौसी के यहाँ किस बात की कमी, जो तू भूखा रह, जान गँवावे है? फलाहार है—यह तो बरत उपवास में भी·····।' मौसी प्यार से बोली।

'ना-ना मौसी—अब तो जो परन किया, उससे एक पैर भी पीछे न हटूँगा।' कह, पीपल ने आँखें मूँद ली।

पीपल ने तीवन छूँघा तक नहीं, खाना तो क्या। उसकी हट देख, मौसी का कलेजा पिघला। वह बोली, 'अच्छा लाल, जतन करूँगी। उस कटहड़-सी कामिनी के कलेजे में तेरे प्रेम की तलैया निकल आवे तो मेरा जीवन सुफल हो।'

पीपल ने फिर कातरता से मौसी के पंजे पकड़े। मौसी प्यार से उसके सिर पर हाथ फेर बोली, 'जी भारी न कर, लल्ला! गौरा-पार्वती की दया हो जाय, तो·····।'

× × ×

पूली एक तरफ फेंक, गेंदा थकी-सी भीतर कोठे में जा लेटी। गेंदा को लगने लगा, उस जवान के बिना न रहा जायगा। पीपल ने उस पर जैसे जादू कर दिया। गेंदा की पुतलियों में पीपल की मूर्ति घूमने लगी—क्या आन-बान वाला जवान। सैड़-सैड़ पचासों गन्ने फाड़ डाले। खोई का ढेर लगा दिया। क्या मजबूत दाढ़ें! दाढ़ मजबूत, तो हाड़ मजबूत। हाड़ मजबूत तो काठी का क्या कहना! क्या दोहरा शरीर! अगौला पकड़ झटका मारे, तो गन्ना जड़ से उखड़ आवे। एक सड़ाके में डेंकुली का करवाला ऊपर। बंजर को भी जोत डाले। दबाकर हल की मुठिया पकड़े कि धरती उमड़ती चली जाय। क्या रूप और क्या

डील-डौल ! क्या फुर्तीला—बछेरे-सा। गोल गाय की दुम-सी बिच्छरवां मूँछें ! मेरी तरफ कैसे कैसे भीठे दीदों से घूर-घूर कर देखते रह गये ! मुझे तो लगै है—हाय, वह मुझ से·····! क्या सचमुच, वह गबरू जवान ?

गेंदा, पलकें मूँद, सपना देखने लगी—सावन की बूँदा-बाँदी, धानी खेतों में मस्त किसानों के नशीले मल्हार और दूर से आते हुए किसी अनजाने प्रेम-गीत के सुर। गेंदा को गुदगुदी-सी होने लगी। उसे दीखा—उसके दीदों में दीदे डाले, भैंस पर चढ़े, मस्ती से झूमते, शरारत-भरे इशारे पुतलियों में लिये, प्रेम-गीत गाते हुए पीपल···उसके घर की दीवार के पास से जा रहा है। वह दीवाल पर गाल रख पर बावली-सी रह गई।

गेंदा प्रेम के सपने देख रही थी। मौसी ने किवाड़ खटखटाये, तो भड़भड़ाकर उठी। मौसी से आने का कारण पूछा तो वह मुँह मटकाती हुई ऊँटनी की तरह ओठ पटफटाते बोली, 'अपनी पीर-बावली, गेंदा। कल ही पावना आया, क्या गबरू जवान·····आज ही जैरे पीला पड़ गया।'

'किस देवता की खोड़ हो गई मौसी।' गेंदा ने अनजान बन पूछा।

'राम जाने बेटी, पर जब से तुझे देखा है, हाय-बावले कुत्ते की की तरह गेंदा-गेंदा की रट लगाये है। हाय ! वह तो गीदड़ की तरह हियाउ-हियाउ कर रहा है। मेरे सफेद बालों को कलंक लग जायगा, गेंदा ! पराये पूत को सौ जोखो ! तूने क्या टोना कर दिया—कौन से उड़द पढ़कर मारे। तुझे गुरु गोरखनाथ की सौंह·····हाय मेरे लाल को·····!' मौसी ने बड़े करुणाजनक ढंग में दाँत निपोर कहा।

'हट !' पलकें नीची कर, गेंदा गुलाबी हो गई। मौसी परख गई। गेंदा के कलेजे में दबा प्यार कुरेदते हुए बोली, 'तेरे बिना न ही तीवन

ताकता है, न साग सूंघता है ! न चटनी चाटता है—और कहे है कि या तो डहर में डूब मरूँ या काढ़ी गर्दन में बाँध पेड़ से लटक मरूँ···।'

'हाय, मौसी—सच ?' गेंदा भौचक्की हो बोली।

'तू हामी भरदे तो वह जी उठे, नहीं तो मेरा बावला कहीं जोहड़े में डूब मरेगा।'

'आह मौसी मेरा जी भी·····उनके लिये लोटन कबूतर की तरह गुटरगूँ-गुटरगूँ कर रहा है। पर हाय, मौसी मिलना किस-विध होय !' गेंदा आँखें गीली कर बोली।

'गौरी पार्वती की मेहर हो तो बिगड़े काम बनें, पर आज शाम को उसे अपनी सूरत दिखादे·····नहीं तो·····।'

'बापू को मालूम हो गया, तो ?'

'जो दोनों का प्रेम सच्चा हो, तो कोई बाल बांका न कर सके।'

'अच्छा, तो मैं आज झुटपुट में खेत में गोबर डालने जाऊँगी··· लौटती बिरिया, तेलिया पीर की बरगद के नीचे···।' धड़कते दिल से गेंदा बोली।

'गौरा पार्वती तुम पर दया करें। अच्छा, मैं चली।' कह मौसी सफलता की खुशी में लोमड़ी-सी उछलती बछिया-सी छलाँगे मारती घर वापस आगई।

× × ×

सूरज डूबा। पोहे जंगल से लौटने लगे। गाँव की गलियों में अँधेरा भर गया। पीपलसिंह उछलते दिल से मिलने जाने की तैयारी करने लगा। लाल अंगोछा कन्धे पर डाल, हाथ में तेल चिपड़ी लठिया संभाल, सिर पर पीला साफ़ा लपेट, मिलन-स्थान पर जा पहुँचा। खेत सुनसान होगये। दिल भूखे बैल की तरह कावे काटने लगा—आँखें घोड़े की दुम की तरह इधर-उधर घूमने लगीं—पीपलसिंह परेशान-हैरान हो गेंदा के लिये पागल होने लगा।

बहुत देर तक गेंदा न आई। वह वियोग में तड़पने लगा। गेंदा की बेदर्दी पर मन ही मन उसे उलाहना देने लगा—

'हाय बेदर्दी बालमा, मोसे नेहाँ लगा कै बड़ा दुख दीना! अरे प्रेम-संदेशा भेजकर भी यह धोखा। गेंदा किसने रख दिया तेरा नाम, पत्थर की सिल! अरे चक्की के पाट, मेरा जी क्यों पीसे डाल रही है! मैंसे दो-दो सानी खाकर जुगाली भी करने लगीं, तू अभी तक नहीं आई! त्रिभगादड़ और उल्लू भी शिकार को चल दिये। हाय मेरी किस्मत की कोठरी पै कौन उल्लू बोल गया। अरी रूठी लुगाई, मैं कौन तेरे बाप का खेत काट लाया। कौन मैंने तेरे बच्चा का गौत चुरा लिया, जो यह के भी न आई! किसानों ने बीस-बीस रोटियां मरोड़ चार-चार चिलमें भी फूंक डालीं, और मैं यहाँ भूखे कटरे की तरह डैं-ऽ-डैं-ऽ-कर रहा हूँ। तू आराम से सिंधाड़े खाके सोती होगी, मैं यहाँ उल्लू की तरह रतजगा कर रहा हूँ। अरे, तुझे कौन-सा साँप सूंघ गया? हाय प्यारी, किस लोमड़ी की माँद में समा गई?'

पीपल घड़ी-भर बैठा, उसकी निष्ठुरता का ध्यान करता रहा। खैर, पत्तों में सरसर की आवाज हुई। पीपल ने समझा, कोई बघेरा तो घात लगाये नहीं आ रहा! साफ़ा सभाल, कुर्ते की बाहें चढ़ा, डण्डा तान पीपल खड़ा हो गया। देखा, गेंदा बगल में छुबड़ी दबाये सहमे-सहमे आ, सामने खड़ी हो गई!

'राम-राम, चौधरना'! पीपल झड़कते दिल से बोला।

'मेरी पाँच राम-राम, चौधरी!' गेंदा शर्माकर बोली।

'मेरी पचासा'।

'मेरी इत्ती, जित्ते खेत में चने।'

'मेरी इत्ती, जित्ते झील में सिंधाड़े।'

'मेरी इत्ती, जित्ते अम्बर में तारे।'

'अच्छा—तुम जीती, हम हारे।'

'हम तो पहले ही हार मान चुके, चौधरी!'

'मेरा जी तो तभी से मुर्गे की तरह कुंकड़ू-कूं कर रहा है, चौधरन !'

'मेरा दिल भी बकरे की तरह मिमिया रहा है, चौधरी जी !'

'मेरा कलेजा तो घोड़े-सा हिनहिना रहा है।'

'मेरा मन भी तो भैंस की तरह रंभा रहा है।'

'पर, मिलना किस-बिध होय।'

'यही तो मैं भी सोचूं हूँ, चौधरी जी। बापू बड़ा बिगड़ैल है—एक लट्ठ से भैंसे की कमर दोलहड़ करदे! चच्चा तो, मरा, और भी·····।'

'पर कुछ भी हो—गेंदा को न पाऊं तो अन्न-जल ग्रहण न करूं।' पीपल ने प्रण सुनाया।

'हाय-हाय चौधरी जी, तुम्हें मेरी जान की कसम जो ऐसी बात करो! भूखे रहे तो गौरी को जीत चुके। हमारा प्यार सच्चा है···तो···।'

'तो हाथ पै हाथ धर कै कौल-करार कर गेंदा।' कह, पीपल ने गेंदा का हाथ अपने हाथ में थाम लिया। गेंदा ने नीची नज़र करली। पीपल ने जरा दबाया तो 'उई' कर फुदक उठी,··· और दूर खेतों में किसी के आने की आहट सुन पड़ी।

'कोई है ?' कह, गेंदा ने झटके से हाथ छुड़ाया और, बिल्ली-सी, झोके-झोके पैर रखती, घर की तरफ़ चल-दी। पीपल भी बछिया के ताऊ की तरह, उछलता-कूदता मौसी की तरफ़ आगया।

उसारे में घुसते ही मौसी के चरण छुए, और सारी कहानी कह सुनाई।

'गौरी-पार्वती की दया। ले, बेटा, रोटी तो जीम ले।' मौसी ने प्यार से आशीर्वाद देकर कहा।

'इत्ती रोटियाँ ?' रोटियाँ-उलट पलट कर पीपल बोला।

'तड़के से खाया ही क्या—तीनों-मुँह बीस-पच्चीस गन्नों से क्या पेट भरै है, बीरना।'

'एक-दो-तीन·····बीस रोटियाँ !!'

'जवान के लिये बीस रोटियां मरोड़ना क्या मुश्किल, मेरे लाल !' मौसी वात्सल्य से बोली।

'मैं क्या कोई बैल हूँ, जो बीस-बीस रोटियां........। मौसी, साढ़े-उन्नीस रोटियाँ—बस, और बाकी भात दे-दे।' कह आधी रोटी पीपल ने मौसी के हवाले की, और हल से छूटे-भूखे बैल की तरह खाने पर पिल पड़ा।

पीपल सफ़ाई से रोटियां तोड़ता रहा, और मौसी बहुत-सी प्राचीन प्रेम गाथाएँ सुनाती रही।

× × ×

सुबह ही, अजीब घटना हुई। गेंदा के घर के सामने चौराहे पर एक कालिया नाग निकला। चारों गलियों का रास्ता बन्द। नाग फुंकार मारता, फन पटकता...इधर-उधर घूमता। यहीं चौपाल के सामने, गेंदा का बाप चौधरी कीकरसिंह पीपल की छाया में बैठ, पंचायत जोड़ता—गाँव भर के आदमी जमा होते। सब बंद। बात की बात में साँप की कहानी गाँव-गाँव फैल गई। कई सांप-मारू आये, पर साँप की फुंकार से लठिया छोड़ भागे।

चौधरी ने अच्छा मौका देखा। एलान कर दिया जो सांप को मारे, गेंदा को पावे। गेंदा के स्वयंवर की कहानी, विधवा की बदनामी के समान गाँव-गाँव में फैल गई। और सैकड़ों छबीले, भड़कीले, हठीले जवान आकर चौधरी की चौपाल के सामने जमा हो गये। गाँव-भर की लोगनियाँ घूँघट के झरोखों से उम्मीदवार वरों को देखने लगी। चौपाल के चबूतरे पर चौड़ी-सी चारपाई पर चौधरी कीकरसिंह हुक्का गुड़गुड़ाते हुए बैठा। पास में गेंदा का चच्चा। समय देख, चौधरी ने भैया को संकेत किया तो उसने उठ कर एलान सुनाया, भाई बिरादरी, आज तुम लोग जमा हुए, हमारी क़िस्मत ! हमारी बेटी गेंदा सयानी हुई। बेटी चाहे जितनी प्यारी, पर है पराये घर का कूड़ा ही। कूड़ा तो घूरे में ही सजै है। सो, आज मौका देख हमारे भाई चौधरी कीकरसिंह नें प्रण किया कि जो जवान इस कालिया नाग को मारे वही हमारी बेटी गेंदा को पावे।

गंगामाई को सामने रख, हम मनादी करते हैं। सिवाने का पीर गवाह...तैलया की चमण्डा साकछी, गौरी-पति की कसम—जो हम अपने प्रन से टलें! जो अपने प्रन से टलें तो सात जन्म गलिया बर्द की जोन पावें और किसी अनाड़ी हलवाहे के हाथ पड़ें। जो हम अपने बचन से हटें, लद्दू टट्टू बनें और सदा मालिक की मार खावें। सो, तुम में से बारी-बारी आ अपने करतब दिखा अपना भाग आज़मालो।'

प्रण सुन, वरों की बाछें खिल उठीं। अपने-अपने हथियार सँभालने लगे। लुगाइयाँ घूँघट की ओट से ताकने लगीं। एक जवान पैंतरा काट, अखाड़े में आया। पीपल के पास जा दण्डा घुमाया तो साँप फुँकार मार मैदान में आया। जोश में आ, जवान ने वार किया। साँप सफाई से वार बचा जवान पर झपटा, तो वह डण्डा फेंक मैदान से भागा।

कई जवान गेंदा को पाने की आशा ले, मैदान में उतरे। छ्ण-भर कर्तव्य दिखा खेत छोड़ भागे। साँप फन फैलाये मैदान में साँय-साँय कर रहा था। चीमटे-सी जीभ चंचलता से काँप रही थी। किसी का जिगरा न हुआ कि आगे आवे और साँप को सुरधाम को धकेल गेंदा को गले लगावे। चोधरी कीकरसिंह का कलेजा कौए की तरह काँय-काँय कर उठा। चच्चा का दिल तो पहले मरियल बैल की तरह बैठा जा रहा था। गेंदा की माँ तो, पकामारी गाय-सी उदास, खड़ी मक्खियाँ उड़ाने में लगी थी। गाँव भर की लुगाइयाँ बूढ़ी भैंसों की तरह जुगाली करने लगीं—नई-नवेली छोकरियाँ भी भीगी बिल्ली-सी सहम गईं। नई ब्याही बहुएं भी छछूंदर की तरह कुलबुला उठीं—हाय, क्या गेंदा के करम में कोई मरद बदा ही नहीं!! बुढ़िया तो सोचने लगी, चौधरी ने क्या किया है, वैसे ही किसी भाई का लौंडा देखकर लौंडिया के हाथ पीले कर देता।

गेंदा मारे शरम के मरी जाय! उसके दीदे, दुख और दर्द के मारे अपने प्रेमी, पीपलसिंह को तलाश करते। वह मन ही मन 'हाय' करती.

और कहती—आज कहाँ गया, बेदर्दी तेरी गेंदा आज तेरे लिये बकरिया-सी मिमियाय है रे। आज तेरी गेंदा गाय की तरह तड़पै है। नेहाँहा लगा कै, यह छल! हाय, किसी बंजर में बाजरा बोता रह गया क्या? आज किसी जंगल में ढोर चराने चला गया, मेरे भोले बलधिये! हाय परदेसिया, आज आकर इस नाग की नड़िया तोड़, गेंदा से नाता जोड़। इस साँप का भेजा निकाल, अपनी गोरी को गले लगाले!

घड़ी भर बीती, कोई आया नहीं। साँप क्रोध में जीभ लपलपाता। कीकरसिंह से न रहा गया। उसने भीड़ को ललकार कर कहा—अबे मेरे यारो, तुमसे लुगाइयाँ अच्छी! अबे जवान होकर भी खड़े-खड़े उल्लू-से क्या ताकते हो! जा के किसी कुइयाँ में डूब मरो। मेरे यारो, तुमसे ज़रा-सा सपोलिया भी नहीं मारा जाता? बलधिये कहीं के! घास खोदो घास कहीं कल्हड़ में! आये गेंदा, को बरने-चले बीरता दिखाने।

तजो आस खेतन पै जाओ,
जा बंजर में ढोर चराओ,
आये बड़े बीर, भट मानी,
जाकर दो ऊसर में पानी,
हटो यहाँ ते कर मुँह काला,
बैठ जपो खेड़े पे माला,
सुनो हमारी आखिर बोली,
जाय पहन लो लहंगा चोली,

अबे, तुम कैसे बीर, डेढ़ घन्टा हो गया, एक ज़रा-सा साँप तक न मारा गया। आज समझा, गेंदा के लायक कोई लौंडा जनमा ही नहीं!

कीकरसिंह बैठने ही लगा कि भीड़ में हलचल हुई और पीपल साफा संभाल, डण्डा फटकार मैदान में आया। हनुमान की 'ह' बोल काली कलकत्ते वाली का जाप कर, जोर से किलकारा—तो साँप फन फैला सामने आया। पीपल ने पैंतरा बदल, कावा काट, डण्डा घुमाया—लेकिन साँप

साफ बचा गया। क्रोध में पागल हो बिजली-सी जीमें चलाता झपटा। पीपल पर फन चलाया! भीड़ में त्राहि-त्राहि मच गई। पर पीपल, लठिया टेक, छलाँग लगा, तीन गज़ की दूरी पर। भीड़ में खुशी का फुहारा फूट पड़ा! फिर पीपल ने सँभल कर वार किया, और साँप एक दम तिड़क कर गज़ भर दूर। वहा से फुंकार मार, बाज की तरह उछल कर, पीपल के पैरों के पास पड़ा। मुर्ग की चोंच की तरह फन चलाया। पीपल पीछे को भागा। साँप उसके पीछे। पीपल वार करता, साँप बचा जाता। पीपल पसीना-पसीना हो रहा था। भीड़ साँस रोक देख रही थी।

गेंदो मन ही मन गौरां पार्वती मनाती। लोगनियाँ पीपल को मन ही मन असीस देतीं। कीकर भी अपने पर पछताता—हाय, इस गबरू के हाथ में तो बिना स्वयंवर ही···। अबकी बार फिर, पीपल ने, जान हथेली पर रख, वार किया। साँप इस बार भी बचा गया, और वह पूरी ताकत से पीपल पर झपटा। पीपल पीछे भागा, तो साँप भी उसके पीछे! हाय राम, क्या होनी है! पराया पूत! पीपल पसीना-पसीना! साँस उखड़ गई। बचने की आशा नहीं! साँप ने वार किया—पीपल उछल कर एक तरफ, और दूर से उसने सफाई से एक ढेला साँप पर मारा, तो साँप और लाल-ताँता हो, दौड़ा। पीपल ने फुर्ती से अपना साफा साँप पर फेंका। साँप ने क्रोध में उसे लिपट कर चबा डाला। वह उसे झंझोड़ने लगा, कि पीपल सिंह ने उछल कर तड़ाक-से लठिया का वार किया। साँप का कचूमर निकल गया। भीड़ में 'जै-जै' कार हो गई! पीपल ने खुशी की किलकारी मारी! और उछल कर साँप की पूँछ पकड़, उसे लटका, चौधरी की तरफ आया।

चौधरी की चारपाई के पास पहुँचा, तो उछल कर चौधरी और उसके छोटे भाई ने उसे गले लगाया, और दोनों ने उसे बीच में कर सारी भीड़ में उसे घुमाया। गेंदो की माँ मारे खुशी के फटी पड़ती। सभी लोग

पीपल को अचरज से देखते ! गेंदो मुस्का कर, दांत तले उंगली काटती रह गई ! मौसी का दिल तो नई घोड़ी की तरह हिनहिना उठा।

इस प्रकार सबकी मनोकामना पूरी हुई। गौरां पार्वती ने दुख दिखाय, सबको सुख दिया। आत्मा-परमात्मा का मिलन हो गया। ★

यहां शब्द-शब्द में रहस्यवाद ! अर्थात्—गेंदो सोई-परमात्मा जानो, और पीपल सिंह सोई-आत्मा पहचानो ! 'बिन गुरु राह न सूझे', सो गौसी ही गुरु—जिसने आत्मा को परमात्मा से मिलाया। सांप ही शैतान या माया, जिसे गुरु, ज्ञान और प्रेम की शक्ति से मार कर आत्मा ने परमात्मा पाया। रहस्यवाद के सभी स्टेज इसमें मौजूद ! परमात्मा को देख आत्मा उसके प्रेम में हक्की-बक्की हो जाय—फिर उसी के गुन गाय, और गुरु की कृपा से मिलन का पंथ सूझे —बिरोग में तड़प रास्ता साफ हो। एक बात और—प्रगतिवाद हिन्दी-साहित्य में कितना प्राचीन है, यह भी इससे प्रकट है ! कहानी में कोई उपमा या रूपक 'बुर्जुआ' टाइप का नहीं—आदि से अन्त तक प्रगतिवाद का प्रवाह ! यानी उस समय भी कितने ही संत ऐसे होते रहे हैं, जिन्होंने प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ-साहित्य को लानत भेजी। आशा है, इस दिशा में और भी खोजें होंगी, और हिन्दी में नये प्राचीन प्रगतिवाद दर्शन होंगे।

★ यह प्रेम-गाथा अति प्राचीन है। लेखक जब बम्बई से २०-२५ मील दूर कनेरी गुफाओं में झख मारता फिर रहा था, तब यह प्रेम गाथा, वहाँ एक गुफा में, ताड़-पत्रों पर लिखी एक बर्तन में रखी मिली। हिन्दी के प्रसिद्ध खोजी-विद्वानों, यानी रिसर्च स्कालरों, ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है। यह प्रेमगाथा, बहुत पुरानी है। १२वी शताब्दी से ६ठी तक भी पुरानी हो सकती है। लेकिन अगर चाहें, तो इसे ईसा की पहली शताब्दी में भी मान सकते हैं। लिपि इसकी ऐसी है, कोई पढ़ नहीं सकता; फिर भी कुछ अक्षर चन्द्रगुप्त-मौर्य के काल के भी हैं। आत्मा का परमात्मा से पूर्ण मिलन है।

: ६ :

उधार-कला

घर में काफी नहीं। सवेरा काटना पहाड़। नौकर को भी बिना काम कहीं भेज दिया। काफी की हुड़क तेजी से सताने लगी, और ईरानी से उधार की आशा की नहीं जा सकती। पहले बिल अभी चुकाये नहीं गये; फिर भी आशा की उँगली पकड़, निवासन रेस्टोरेन्ट की तरफ आया। देखा, शफी मियाँ मौजूद—जमे हैं, बैंक के पहरेदार गोरखे की तरह। सोचने लगा, अजीब आदमी है। शाम तक धरना दिये रहता है। यानी डाक्टरी उसूल से भी तो कितना बुरा है, एक जगह बैठना! दिन भर बैठे रहने से पेट भी तो .....। जाके समझाने लगूँ तो समझेगा, बनाता है, या उधार लेने के लिये .....। और कहीं उस नये छोकरे से मना कर दे, तो आगे-पीछे उधार मिलना भी बन्द। इसका बाप कितना समझदार था—हमेशा घूमता। तभी तो लाल हो रहा था। वैसे उधार देते उसकी भी नानी मरती, फिर भी वह कभी-कभी दांव पर चढ़ जाता। मगर यह शफी तो महा-सूम—पक्का मक्खीचूस। कोई असर ही नहीं—चिकना घड़ा।

एक-दो मिनट निवासन पासवाली दूकान पर कुछ गपशप करता रहा। अचानक नजर गई, शफी मियाँ कहीं जाते मालूम हुए। निवासन दिल ही दिल में उत्साह और आनन्द से नाच उठा। आशा की किरन चमकी। आज है—कला-कुशलता। रे मना, आज परीक्षा तेरी! उधार-कला में क्या कमाल करते हो, आज दिखादो। सोचते हुए, निवासन शान और

मुसकान के साथ रेस्टोरेण्ट मे आया। गल्ले पर छोकरा बैठे देखा, तो वह चपल मुसकान और विस्मय से बोले,'अरे···अरे, तुम कब, भाई जान ? और वह······वही······वही·······क्या भला-सा नाम है ? यानी, कभी-कभी अपने ही आदमियों का नाम भूल जाता है।'

'बड़े मियाँ !' छोकरा बोला।

'हाँ-हाँ, वही-वही बड़े मियां।······जरा बुजुर्ग-से और वैसे बिलकुल जवान······यानी, उनकी तो धजा ही निराली...।' निवासन याद करने-के-से ढंग में बोला।

'आहो, अब्बा जान ? —वह तो ईरान चले गये।'

'ईरान चले गये।—क्यों?—क्यों बनाते हो, भाई जान ? यानी अभी दो-चार दिन भी तो नही हुए······घण्टों उनके साथ गपशप करके ...।' कह, निवासन ने उसके कन्धे पर प्यार से थपथपाया।

'कसम खुदा की—आज दस दिन होगया, सा'ब !'

'दस दिन। गजब। मेरा तो ख्याल है, मैं दो-चार दिन हुए ही दो मक्खन के पैकेट, एक हौर्लिक्स और ······भई, बड़े मियाँ, बड़े मियां ही थे—उनको कोई क्या पहुँचेगा—कैसा मजाकिया और मिलनसार। क्या बुजुर्गी यानी लाल चेहरा तमतमाता हुआ।'

छोकरा मुसकाते हुए सुनता रहा, और गाहकों से पैसे भी लेता रहा। निवासन कहे गया, 'हम पर तो बड़े मियाँ ने क्या जादू कर दिया था, न-जाने ! उनके पास से जाने को तबीयत ही न करे और हमारे लिये तो आधी-रात तैयार। कभी भी हाथ न पकड़े, चाहे जो उठा ले जायँ। और हँ-हँ-हँ-हँ, मजा यह, जब हम दाम देने आयँ तो लेते हुए कैसे शर्मिन्दा होते। यानी, ऐसे आदमी·······यानी—ईरानी लाखों देखे, पर बड़े मियाँ··· उफ़ ! क्या कलेजा ······यानी हमने भी सदा अपना एकाउण्ट यहीं रखा।'

'आपकी मेहरबानी, सा'ब।'

'बुरा न मानना, भाईजान, पता नहीं, तुम कैसे निकलो ! सचमुच, बड़े मियाँ तो खानदानी·····और शराफत की तस्वीर।' निवासन बोला।

'हम भी आपका ताबेदार है सा'ब।'

'सो तो बजुर्ग कह गये हैं—खानदान का असर तो···हँ-हँ-हँ, तुम भी तो भाईजान खानदान के हो·····और·····अरे-अरे, आओ, मिस्टर मोदी, यह उन्हीं बड़े मियाँ के·····।' मोदी को आते देख निवासन बोला।

मोदी साहब पास आये तो निवासन ने दोनों का परिचय कराया, 'यह मि० मोदी। हमारे ख़ास दोस्त—बंबई-बैंक के मालिक और, हँ-हँ-हँ, यह अपने उन्हीं बड़े मियाँ के छोटे साहबज़ादे·····यानी बिलकुल अपने बाप की तरह। मि० मोदी, आपसे भला क्या छिपा, बड़े मियाँ प्यार में मुझे कहा करते—तू तो मेरा बड़ा लड़का है, निवासन! हँ-हँ-हँ-हँ, डरना मत बिरादर, जायदाद में हिस्सा नहीं माँगूगा।'

कहकर निवासन हो-हो करके हँसा। लड़का भी हँसकर बोला, 'आप मालिक हैं, सा'ब।'

'बड़े मियाँ, ईरान गये हैं, इसकी शादी तय करने। सुना है, बिरादर वहाँ बड़ी नायाब-आबदार, दुमदार नहीं, परियाँ तुम्हारे लिये········।' निवासन ने उसको गुदगुदाया।

'हमारा शादी, सा'ब! खुदा-खुदा!' कहकर लड़का मुसकाया।

'अरे, भाईजान! दावत में ही मत बुलाना—छिपाते क्यों हो? बड़े मियाँ हमसे कहते थे, बड़े अमीर घर की·····और खूबसूरती में ईरान-भर में एक ही काकेशस की परियाँ भी—शर्माएँ·····।' कहते हुए, निवासन ने उसे गुदगुदाया। लड़का हँसते-हँसते लोट-पोट हो

गया। मौका पा संकेत से बाय को चाय लाने का आर्डर दे, निवासन हँसते-हँसते मोदी का हाथ पकड़, मेज पर बैठ गया।

चाय पी' गई। बिस्किट-केक खाये गये। उठ कर मोदी पैसे देने लगा तो निवासन ने उसका हाथ पकड़ लिया, 'क्या करने लगे मि० मोदी? आपसे पैसे लेकर अपने बुजुर्गों की बदनामी करायेंगे क्या!······ ······यही तो अपना एकाउण्ट है······। हाँ, बिरादर, एक पौण्ड काफी······थोड़े से बिस्कुट भी······बढ़िया वाले—दो पैकेट से ज्यादह न दे-देना। रेक्सौना की दो बट्टियाँ, और हाँ, आजकल का स्टाइल कैसा आ रहा है?—बड़े मियाँ से ले गये थे, वह तो बढ़िया निकला—हाँ, एक बोतल बहुत। दो पैकेट पॉलसन के भी··········।'

'बॉय, सा'ब का सामान लाकर दो।' लड़का बोला।

'वे नालायक बैठे हैं न, लेकिन कहीं उलटे उस्तरे से हजामत न बना लेना, हें-हें-हें, भाई जान!' निवासन बोला।

'यह भी क्या हो सकता है, सा'ब!' कह, लड़का हिसाब जोड़ने लगा।

कहीं शफी न आ मरे, निवासन को जल्दी पड़ी थी। शफी आ टपका, तो बना-बनाया काम मिट्टी। भूत का ध्यान न करो, वह मौजूद। शफी न-जाने-कहाँ-से आ टपका! निवासन ने देखते ही दूर से एक शानदार खुशामद-भीगा आदाब पिलाया, और मोदी साहब को मुसका कर कहा, 'हँ-हँ-हँ, आप चलें।' मोदी साहब, 'मियाँ' कह, चलते बने।

'क्या है।' शफी ने भीतर आते हुए कहा।

'यों-ही जरा······तुम तो जानते ही हो······इन क्रिश्चन दोस्तों के मारे तो······आ मरे मर्दूद, सवेरे-सवेरे······। लाओ, नोटबुक बिरादर, एकाउण्ट लिख दूँ············बड़ी देर हो गई।' निवासन बोला।

'कैसा एकाउण्ट ?' शफी ने उदासीनता से पूछा।

'यों-ही थोड़ा-सा सामान·····।'

'सामान—सामान·····पहला बिल चुकाता नहीं·····सामान-सामान! अब नहीं देगा सामान ?' शफी बिगड़कर बोला।

'तो, क्या कोई मारा गया दाम ? वाह, बड़े भाई !'

'कब चुकाया दाम—सारा बिल—अभी तक·····।'

'अरे तो घबराते क्यों हो—सब तो लिखा है। हमारे साइन भी हैं·····।'

'क्या करेगा साइन का—हम साइन नहीं माँगता। साइन·····साइन·····!' शफी फिर बिगड़ा।

'बिना साइन, एकाउण्ट का पता क्या ? भाभी से झगड़ा, तो नहीं कर आये···वाह बड़े भाई, वहाँ फटकार खाकर आये और लगे हम पर गुस्सा उतारने·····हँ-हँ-हँ-हँ, लाओ नोटबुक, यह हिसाब भी·····।' निवासन मुस्काकर बोला।

'नोटबुक—नोटबुक ! फाड़कर फेंक दो नोटबुक ! जला दो, साला नोटबुक ! क्या करेगा नोटबुक·····नोटबुक·····नोटबुक !' शफी एकदम गर्म होकर बोला।

'जला दो नोटबुक—फाड़ दो नोटबुक ! इसका गतलब, फिर मनमाना हिसाब लिख लो ! वाह, बड़े भाई ! हिसाब से ज्यादा एक पाई भी नहीं दूंगा ! जला दो—फाड़ दो ! आये, बड़े चालाक ! अब समझा। मैं भी तो कहूँ·····क्यों जला रहे हैं नोटबुक ! हम से ही चार-सौ-बीस।' निवासन ने ऐसे एक्टिंग के ढंग में कहा कि शफी को भी हँसी आ गई !

वह हँसी दबाकर, ओठ चबाते हुए बोला, 'बाबा, हमको नहीं माँगता·····हमको उधार देना नहीं माँगता। बस, माफ करो।'

'वाह, बड़े भाई, खूब एक्टिंग करते हो गुस्से का !' कह, निवासन

ने लड़के के हाथ से नोटबुक छीन हिसाब लिख दिया और इशारे से धन्यवाद दे, मुस्काते हुए रेस्टोरेण्ट से बाहर।

तेल, साबुन, बिस्किट से भी १५ दिन के लिये निश्चिन्त। मक्खन भी चार-पांच दिन सब्जी का स्वाद सुधारता ही रहेगा। सारा सामान लिये निवासन कमरे में आया, तो धोबी मौजूद—जैसे घर से निकलते ही छींक! अजीब 'जमदूत' है—यानी आकर जमा है। निवासन सामान नौकर को देते हुए बोला, 'कपड़े देकर चला जाता। कुएठना तो बैठा ही था।'

'पगार के लिये, सेठ!' धोबी बोला।

'कुएठन, बैंक से रुपया निकाला क्या? और हां, वह चैक जमा कराया?' निवासन ने बैठते हुए पूछा।

'आज जाऊँगा।' नौकर ने कहते हुए सामान उठाकर रख दिया।

'आज—अब? ग्यारह—बारह—एक तो यहीं बज जायगा। जाते-जाते बैंक बंद! कल है सन्-डे, और परसों मन्-डे—पारसी-न्यू-ईयर्स-डे·····यानी लगातार·····छुट्टियाँ ही छुट्टियाँ·····!' एक मिनट कलैण्डर देखते हुए, निवासन धोबी से बोला, अच्छा, तो ऐसा करो बुड्ढे, अगले इतवार को तो आओगे ही, तभी प्रेम से बातें होंगी।'

'का परेम तें बातें होंगी! हमार तो पाहुन आय रहे। चार महीना तो होइ गया·····कभी चिक नहीं बना·····कभी बंक बंद। कभी कुछ·····कभी कुछ! हमका आज पगार देइ दओ, सेठ।' धोबी जरा गरम-सा हुआ। इतने में रुस्तम भी आ गये।

'क्यों गरम हो रहा है, बुड्ढे?' वह बैठते हुए बोले।

'क्या बताएँ सा'ब, इन अशिक्षितों से उलझना। कह चुका, आज बैंक·····कल भी बैंक बंद रहेगा। निवासन-जैसे धोबी की मूर्खता

पर तरस खाते हुए, बोला, और नौकर को दो काफ़ी तैयार करने का संकेत भी कर दिया।

'तो हम का करी—हम गरीब आदमी·····पगार भी चा·····।'

'चार महीने की न कह दे,' निवासन फड़ाक से बोला, 'चाहिए·····पगार एडवान्स चाहिए! यानी यह हाल है! पगार चाहिए·····पर बैंक खुलता, तब तो रुपया निकलता। बैंक का कायदा-कानून जानता भी है कुछ?'

'आग लगे बंक मॉ—हम का करी बंक! बंक-बंक! जब आई, पगार माँगी·····तबहु बंक·····बंक।' बुड्ढा तैश में आ गया। चार महीने से बैंक-बैंक तो सुन रहा था।

'बैंक में आग—बैंक में आग लगे! बुड्ढे तुझे शर्म नहीं आती। बाल सफेद हुए—बैंक में आग लगाने चला, अभी गिरफ्तार हो जायगा! जेल में जायगा क्या? हे भगवान्, बैंक में आग! टका-सी जीभ चलादी। तेरे बाप का क्या जायगा—मारे तो हम लोग जायंगे, जिनका लाखों का कारोबार बैंक से·····। कैसी बोली बोलता है! 'बैंक में आग' कहते हुए, तेरी छाती नहीं दरक गई? हाय, तेरी जीभ नहीं काँपी? तेरा कलेजा नहीं धसक गया·····'! ओह! हे भगवान्, अगर आज हमारे देश में शिक्षा का अभाव नहीं होता, तो·····।' निवासन ने उसे आड़े हाथों लिया

'बुड्ढा सठिया गया, वरना ऐसे शब्द·····। बैंक में आग लगे तो लाखों करोड़पतियों का दिवाला निकल जाय·····करोड़ों सेठ दर-दर भीख माँगते फिरें!' उसे रुस्तमजी ने भी डाँटा।

'और क्या—लेकिन इसके बाप का क्या जायगा!' निवासन बोला।

नौकर ने दो गिलास काफी के, और कुछ बिस्किट सामने ला रखे।

'लीजिये न !'

'बस, बस ।' रुस्तम बोला ।

'जब-तब तो आते हो·····और इसमें कौन बोझ है !' निवासन रुस्तम की ओर प्लेट सरका कर बोला ।

धोबी क्रोध में कह तो गया, पर मन ही मन बहुत लज्जित हुआ । अब विनय और क्षमा की शैली में बोला, 'बाबू जी, हम ग़रीब आदमी— खर्चा की तंगी । अभी कर्ज उठाकै लरिका की शादी बनाई·····हम का करि, तुमहु बताओ ।'

'तो ले जा अभी चैक— कौन मना करता है ! ले आना बैंक से मंगलवार को । बोल, कितने का ?' निवासन ने डाट और रोब की एक और तह चढ़ाई ।

'ना-ना, हम चिक तो कबहुं ना लिहैं, सेठ ! हमका यहां कौन जानै·····? साला कोउ हमका पुलिस मां दे दैइ, तो हम का करिबै, बाबूजी । हम कहाँ मारे-मारे फिरिबै ?' धोबी बोला ।

'तो, रविवार को तो आयगा ही ।' रुस्तम ने गिलास ओठों से लगाते हुए कहा ।

'बाबूजी, अगले एतवार को दया करिदैं·····। अच्छा, राम-राम··· ·····तो अब हम जाइ ।' धोबी उठकर चलने लगा ।

'और लीजिये न—ऐसा भी क्या ?' निवासन ने रुस्तम से अनुरोध किया ।

'उहुँ—ना । जाकर अभी खाना भी तो·····।' रुस्तम बोला ।

रुस्तम जाने के लिये उठा । निवासन ने सोचा, "जेब-खर्च के लिये पास-पल्ले कुछ है नहीं । निवासन ने अक्ल का तीर मारा और रुस्तम पर रंग चढ़ाते हुए बोला, 'और रुस्तम सा'ब, यानी इन हजरत की अक्ल तो देखिये·····इतने दिन काम करते हो गये, अभी इतनी तमीज नहीं, जो कल बैंक से जाकर·····यानी, उरा धोबी के सामने

हमारी क्या पोजीशन रही ! दो दिन बाद बैंक खुलेगा—और यहाँ माँगा भी किससे जाय !'

'ना-ना, दो-चार दिन काम चलाने के लिये······थोड़ा-बहुत मैं·········।' रुस्तम ने शिष्टाचार दिखाया।

'लेकिन जब होते-हुआते, दोस्तों को कष्ट देना—'खैर प्लीज स्पेअर भी एबाउट फिफ्टी चिप्स······थैंक्यू।' लजाने का अभिनय करके निवासन बोला।

'अच्छा, मैं घर से भिजवा देता हूँ—दादर से कुछ सामान भी लेना है।' कह, रुस्तम जाने लगा।

'जा रे, साहब के साथ।' निवासन नौकर से बोला।

'इसे काहे को परेशान······मैं खुद·······।'

'यह भी तो अपनी ग़लती का दण्ड भोगे और सामान भी पहुँचा देगा। कुण्ठन, जा रे, साहब का सामान पहुंचा देना बँगले पर। साहब एक लिफाफा देंगे, उसे फौरन ले आना। हँ-हँ-हँ-हँ, मि० रुस्तम अपनी मिसेज से हमारा सलाम तो कहना, और हँ-हँ-हँ-हँ—वह क्या हम से इतनी नाराज हैं कि कभी हमारे यहाँ आकर काफी तक नहीं पीतीं।' निवासन ने एक साथ कई तीर चलाये।

रुस्तम मुस्का भर दिये। दोनों ने हाथ मिलाया, और रुस्तम कुण्ठना को साथ ले बाहर हो गया।

छुट्टी का दिन, जमदूतों का ताँता लगा ही रहेगा। बहाना भी कहाँ तक किया जाय। किसी दोस्त के यहा जा, जमना, ठीक ! नहा-धो, कपड़े बदल सिगरेट सुलगाई। आराम-कुर्सी में लेट पहले कश के लहराते धुएँ में निवासन अपनी कला की सफलता का इतिहास तलाश करने लगा। किसका क्या मनोविज्ञान, किसकी दाढ़ से पैसा कैसे खींचा जाय, किन्तु दोस्त को कैसे मौके पर पछाड़ा जाय, जरा सोचने

ही लगा था कि मगन भाई, टेलर ने आकर ध्यान भंग किया, 'जय-हिन्द साहब ।'

'ओह—मगन सेठ ? आओ—आओ !' निवासन उसे देखकर बोला ।

'आज दर्शन हो गये कितनी ही बार·····।'

'आजकल काम बहुत ज्यादह—और तुम तो जानते ही हो, मगन सेठ, आजकल फारेन ट्रेड में कितनी गड़बड़ है। सारा रुपया फँसा पड़ा है—जहाज आ ही नहीं रहा, अभी तक·····और चेम्बर आफ कामर्स का काम·····हँ-हँ, इस साल·····यह सभा·····वह सभा···· भई, मैं तंग आ गया·····उनके सभापति न बनो तो लोग नाराज होते हैं।' निवासन गम्भीरता से धुआँ उड़ाते हुए बोला ।

'बड़े आदमियों के बड़े काम·····हँ-हँ-हँ-हँ, मैं उस बिल के लिए',···· भगन हँसते हुए बोला ।

'आज ?·····आज त्यौहार के दिन !'

'कैसा त्यौहार, सरकार ?' मगन ने विस्मय किया ।

'एक्समस शुरू हो गया न—बड़ा दिन।'

'इससे हमें क्या—यह तो ईसाइयों का·····।'

'समझदार होकर भी ऐसी बातें ! तुम्हारे मुँह में ये शब्द। नारायण—नारायण ! गाँधीजी महात्मा ईसा को कितना मानते थे। और कितने क्रिश्चन भी गाँधीजी को ईसा का अवतार·····और तुम तो पक्के··· कांग्रेसी—इतनी बार जेल गये। गाँधीजी के परम-भक्त। देश के लिये क्या-कुछ नहीं किया ! यानी, कौन-सी यातनाएँ नहीं सहीं ! और, अब क्या कांग्रेस छोड़ दी ?' निवासन ने मगन की झूठी प्रशंसा की ।

'कांग्रेसी तो, हैं—हैं—हैं, सरकार हम अब भी····।' मगन की आत्मश्लाघा-रस का स्वाद लेते हुए, गोल-मोल लुढ़का गया ।

'छिपाने-शर्माने से क्या—हम तो आदमी की सूरत देखकर

बता दें। साफ मालूम होता है— देश के लिये घर-बार, कारोबार बरबाद कर बैठे। कभी माथे पर सलवट न आई। भरी जवानी में जोग! माया! देश-भक्ति की चमक कहीं छिपाये से छिपती है। चेहरा अब भी चम-चमा रहा है।' निवासन ने उस की आत्म-प्रशंसा की भूख को और भी उकसाया!

'कहने से क्या सरकार ···हँ-हँ-हँ-हँ, वह तो सभी भाइयों का कर्तव्य था।' भगन भी मुफ्त का यश भला क्यों छोड़े!

'तुम जैसे निष्कर्मी कर्मी बहुत कम हैं भगन सेठ जी।

'आपकी दया···तो बिल के लिये कल आऊँगा।? सिर्फ एक-सौ-पछत्तर ही तो····।' भगन ने फिर याद दिलाया।

निवासन, एक विशेष पोज बनाकर, सोचने लगा अजीब कृतघ्न आदमी है—इतनी खुशामदें यों-ही पी गया, नालायक, पैसे का पीर। कुछ क्षण निवासन कलैण्डर में नज़र घुमाकर बोला, 'दो जनवरी तक तो यह बड़े रोज का ही टण्टा ···सच, भगनसेठ, हम तो परेशान हो गये, इन क्रिश्चनों से, और तुम तो जानते ही हो, हमारा सारा कारबार इन्हीं लोगों से..... तो तुम ऐसा करो···।'

निवासन उसे कोई तारीख देने के लिए अक्ल की जेबें टटोल ही रहा था कि कपड़े वाला भी आगया। उसे देखते ही निवासन फुर्ती से खड़ा हो, तपाक से मुस्काते हुए बोला, आओ—आओ, सेठ, मैं तो खबर भिज-वाने वाला ही था कि आकर···!'

'कि पेमेण्ट ले जाओ····· सो लो, मैं खुद ही आगया।' कपड़े वाला बोला।

इतने ही में कुण्ठना ने लाकर एक लिफाफा दिया। रुस्तम के भेजे पचास के नोट निवासन ने उनसे छिपाकर देखें, और पत्र पढ़ने का अभिनय-सा करते हुए बोला, 'तो ऐसा करो—'

'कहिये ।'

'दो जनवरी तक तो·····तो चार, पाँच जनवरी को आकर·····।'

'चार पाँच जनवरी को·····।'

'हाँ, चार-पाँच जनवरी को आकर मालूम कर जाते बिल के लिये फिर कब आना चाहिए ।' निवासन फुर्ती से बोला । दोनों काठ-मारे से देखते रह गये । 'ओह चार बजने लगे ! चेम्बर आफ कामर्स की मीटिंग !— मुसीबत, मुझे ही प्रेज़ीडिएट बनाया है····· ।' लिफाफा जेब में रख, कहते हुए, निवासन फुर्ती से बाहर हो गया ।

: १० :

देवर-भाभी

उदित जब-कभी भावुकता-भीगी प्रेम-व्याकुल वाणी में प्रेम-प्रकाशन करता, तो धारा अनजान-सी बन, ऐसा भोलापन प्रकट करती कि उदित बेताब हो उठता।

'धारा, कब तक अलग-अलग रहें—इस प्रकार ?' उदित ने दो हृदयों का अलगाव दूर करने की कामना की।

'दिल्ली में मकान मिलना कितना मुश्किल है ! उदित, वरना, हम अलग-अलग क्यों रहते ?' धारा ने प्रेम-भावना को यथार्थ की शिला पर दे मारा।

'मेरा मतलब ·····।'

'मैं समझ गई—तो आप ही खोज लीजिये न एक अच्छा-सा फ्लैट। जहाँ रहती हूँ, मकान तंग है।' धारा फिर अनजान हो, बोली।

'फ्लैट में चाहे न भी स्थान मिले, पर अपने हृदय में' धारा मैं·····' उदित बेताब हो बोला।

'ओ हो·····हो-हो हो', धारा खिलखिला पड़ी—'आप किसी दूसरी दुनिया में हैं ! 'धारा ने हँस कर उदित की आँखों में आँखें डालीं।'

जानकर भी इतनी अनजान न बनो; धारा·····!"

'अनजान नहीं बनती—मैं सब समझती हूँ। हृदय में इतनी जगह कहाँ ! छोटा-सा हृदय—बताओ उसमें खाना कहाँ पकाओगे·····

ड्राइंग-रूम कहाँ बनाओगे ?·····और अगर आवश्यकता हुई, तो ड्रामे का रिहर्सल कहाँ करोगे ···?' कह, धारा इतनी उच्छृंखलता से हंसी कि कमरा गूँज गया।

'ओह—उदित, माफ करना। ज़रा·····।' कहते हुए, धारा चंचलता से बाहर हो गई। उदित अपनी काल्पनिक भावनाओं मे भटकता हुआ उसकी साड़ी की पवन-कम्पित लहिरयाँ देखता रह गया।

'अपने कमरे के किवाड़ खोल, धारा शीघ्रता से भीतर आती हुई, बोली 'आप कैसे, आज ?'

'यों-ही चला आया।— उदित आया है क्या आज ?' कपूर साहब ने पूछा।

'दो दिन की छुट्टी पर हैं —परसों आयेंगे। क्यों ?' धारा ने उन्हें भ्रम मे डाल दिया। कहीं स्वयं उससे मिल न ले—सारा भेद खुल जाय !

'अजीब लड़का है—यहां आये एक महीना हो गया, अभी तक मिला तक नहीं। आज ही चाची की चिट्ठी आई है', कपूर साहब बोले।

'किसी के प्रेम में तो नहीं फंस गया—कभी आने की फ़ुरसत ही न मिले', धारा ने मजाक की।

'पागल !' कपूर साहब हंस भर दिये। उनको क्या मालूम, धारा उदित को क्या—उल्लू बना रही है।

'और तुमने भी नहीं कहा कभी घर आने के लिये ?'

'मैंने कई बार कहा, रोज वादा कर दिया; पर आये कभी नहीं। खैर, अब की बार जबरदस्ती लिवा लाऊँगी।' धारा बोली।

'तो मैं चलता हूँ। परसों जब आवे तो कहना।' कपूर साहब उठकर चलने लगे।

धारा भी उन्हें द्वार तक पहुँचाने के लिये साथ उठ गई। चंचल पुतलियों से इधर-उधर देखती जाती, कहीं उदित न आ जाय।

धारा, कपूर साहब से बातें करती, हँसती, अपने घुँघराले बालों को लहराती, चली जा रही थी—सामने से उदित आते दीखा। धारा घबराई, कहीं आ न जाय। दुर्घटना के बचाव के लिए, धारा कपूर साहब को एक तरफ मोड़ ले गई। धारा ने उदित को देखा, और उदित ने हंस-हंस कर बातें करते धारा को देखा। पर वह इस सफाई से मुड़ी कि उदित न कपूर साहब को देख सका, न कपूर साहब उदित को। दुर्घटना होते-होते रह गई। उदित भी स्वयं बचाव के लिये, नजर बचा, एक तरफ मुड़ गया।

कपूर साहब को कार तक पहुँचा कर धारा मुस्कान-भरी चंचलता से लौट आई। स्थिति का रस भीतर ही भीतर पान करती हुई, वह अपने कमरे में आ गई। उधर उदित हृदय में कौतूहल की धड़कन लिये, अपने रूम में आ बैठा।

× × ×

धारा 'बाल-वनिता' विभाग की प्रोग्राम-असिस्टेण्ट होकर आल-इण्डिया-रेडियो, दिल्ली आई। मुकास्ते ओंठ, चमकती-चंचल पुतलियां, आकर्षक चाल और वाणी से तो जैसे शहद उमड़ा पड़ता। दो सप्ताह में ही साथियों का सम्मान और स्नेह उस पर बरसने लगा। कलाकार उसकी योग्यता पर मुग्ध। सुकुमार-संस्कृत व्यवहार, जादू-भरा वार्तालाप, धुले, साफ-सुथरे सम्बन्ध—कौन उससे मिलने को लालायित न हो! उदित तो उस पर मुग्ध। उदित ड्रामा-इंचार्ज, धारा जब-तब सलाह लेने उसके पास आती, और वह और भी तीव्रता, आकुलता और मधुर-काल्पनिक सपने समेटे उसके निकट आ जाता। दोनों के रूम सटे हुए—कभी भी गपशप हो जाती। कभी-कभी दोनों में हंसी-मजाक चलती। उदित, रोमाण्टिक युवक—धारा सुन्दर और शिक्षित, सुकुमार नारी! दो-तीन सप्ताहों में ही उदित प्रेम की कल्पना ही नहीं कर बैठा, उसे सच भी मानने लगा। धारा ने एक शैतानी की—उदित को पता न चलने

दिया कि उसका विवाह तो हो चुका है और उदित के ही ताऊ के लड़के मि० कपूर से।

उदित प्रेम की सड़क पर सरपट दौड़ता गया और धारा भीतर ही भीतर इस स्थिति का रस पान करती रही। उदित जब भावुकता-भरा प्रेमालाप करता तो, धारा ऐसे गोल-मोल उत्तर देती कि उसे और भी शह मिलती, या केवल कटाक्ष से मुस्का देती! थोड़े समय में ही वह बहुत आगे बढ़ गया।

एक-दो दिन धारा उदित से न मिल पाई थी। उदित रूठा बैठा था। कमरे में अकेला। धारा आ गई—उदित उदास,···मन में फूला-फूला! उसकी ओर देखा तक नहीं!

'उदित, अरे उदित...इतने उदास!—जी कैसा है?' धारा ने चंचलता से मुस्कान-डूबे विस्मय से पूछा।

'तुम्हें मेरी उदासी से क्या, धारा—?' रूठे प्रेमी की तरह उदित बोला।

'तुम्हारी उदासी से हमें कुछ नहीं—तब तो तुमने मुझे पहचाना ही नहीं, उदित।' धारा मुस्कान ओठों में ही कुचल, बोली।

'शायद पहचान भी न सकूँ तुम्हें।'

'एक दिन पहचानोगे ही—मुझे और मेरे हृदय को कभी तो पहचानोगे, उदित...। तुम नहीं जानते तुम्हारी जरा-सी परेशानी मुझे कितना बेचैन कर देती है!' धारा ने भावुकता का अभिनय किया।

'तभी तो आपकी सूरत भी देखने को न मिली चार-पांच दिन से!' उदित ने उपालम्भ दिया।

'ओह, अब समझी—मान किये बैठे हैं, श्रीमान् जी! मैं तो डर गई थी, न-जाने क्या हो गया—मेरे नन्हें साजन को!' धारा हँस पड़ी, पर उदित को हँसी न आई।

'अच्छा, इतने निष्ठुर न बनो—इस प्रकार रूठोगे, तो···।' धारा ने मनुहार की।

'तुम चाहे कितनी निष्ठुरता करो... । सदा मुझ से दूर-दूर भागती रहो...।'

'तुम से दूर भला मैं कभी थी !...तुम नहीं समझते, उदित, मैं तुम्हारे कितने निकट हूँ। तुम नहीं जानते मैं तुमसे कितना प्यार...जब तुम मुझे पहचानोगे तो—तब तुम समझोगे मैं तुम्हारी कौन हूँ।' धारा ने फिर गोल-मोल लुढ़का दी। उदित का मान पिघल कर बहने लगा। भावुकता का धारा ने इस ढंग से एक्टिंग-सा किया कि उदित को हँसी आ गई।

'शैतान !' उसके हँसते ओठों से निकला।

'हँसा सो फँसा...उह!' धारा ने उसे और भी गुदगुदाया और टन्नन्न्-टन्नन्न्-टन्न् घण्टी बजाई। चपरासी उपस्थित।

'साहब के लिए दो चाय...खाने के लिये भी कुछ।' नौकर चला गया।

'धारा,एक बात कहूँ—नाराज न हो, तो—?' शर्मीली वाणी से उदित ने पूछा।

'अपनों से भी कोई नाराज होता है ?' प्रश्न में ही धारा ने 'हाँ' कह दिया।

एक छोटी-सी डिबिया खोल उदित ने 'लाकेट' निकाला। धारा के सामने रख पलकों में स्निग्धता ले धारा की आँखों में झांकने लगा।

'क्या ? मैं समझी नहीं।' धारा उसे देखते हुए भोली, ग्रामीण बाला के समान अनजान बन कर बोली।

'यह तुम्हें पसन्द है ?'

'तुम्हारी कौन-सी चीज़ पसन्द नहीं—लेकिन यह क्यों लाये हो ?' धारा अब भी बन रही थी।

'तुम्हें भेंट !' कह, उदित एक ओर देखने लगा।

'उदित, इतना अपव्यय ठीक नहीं। मैं आभूषणों की शौकीन भी नहीं। फिर मैं भी तो स्वयं...।' कह, धारा सोचने लगी—देवर जी वास्तव में भावना में बहने लगे हैं। कभी-कभी सोचती कह दूँ,—ओमान् उदित जी, मैं तुम्हारी भाभी हूँ।

'तो क्या मेरी यह तुच्छ भेंट भी स्वीकार नहीं !' कहते ही, उदित के मुंह पर उदासी छा गई।

'पर इसकी आवश्यकता क्या है, उदित...? परस्पर जब हम इतने निकट हैं,...।' धारा ने बनावटी इन्कार किया।

'मेरी अभिलाषा है—मेरी खातिर ही सही।'

'तब, अस्वीकार कैसे कर सकती हूँ !' धारा ने उपहार स्वीकार किया। मन ही मन वह बहुत हंसी।

'पर...।' मुस्कान की चमक पुतलियों में खिलाता, लाकेट हाथ में ले, उदित बोला।

'क्या !' ढलते कटाक्ष से धारा ने पूछा।

'मैं इसे तुम्हारे गले में—।' कह उदित उसे कम्पित हाथों से धारा के गले में पहनाने को आकुल हुआ धारा बोली 'हटो' और उसे उसने चंचलता से छीन लिया।

और नौकर ने चाय लाकर मेज़ पर रख दी।

× × ×

धारा चमकती पुतलियों, लचकती चाल, गुनगुनाते स्वर से घर आई। वक्ष पर झिलमिलाता लाकेट। श्री कपूर ने लाकेट देख आश्चर्य और प्रसन्नता से पूछा, 'कहां से खरीदा ?'

'यह है प्रेम उपहार—एक प्रेमी-साहब ने भेंट दिया है।' धारा मुस्काकर बोली।

'पागल तो नहीं हो गई, धारा !' कपूर ने मीठी ताकना दी।

'विश्वास नहीं करते ?—सच, एक प्रेमी ने दिया है। रेडियो पर एक प्रेमी ने।' धारा फिर मुस्काते हुए बोली। कपूर जरा असमंजस में पड़े। अजीब उलझन-सी हुई। रेडियो पर रोमांस—धारा यह क्या बक रही है—किसी से प्रेम! पर, तब कहती ही क्यों ? किसी को बनाने लगी है—शायद मुझे ही बनाने के लिये। कपूर का चेहरा उतर-सा गया—अपनी पत्नी, और किसी दूसरे से प्रेम करे और इतनी प्रसन्न हो-होकर सुनाये—विलक्षण! फिर भी धारा पर सन्देह वह कर नहीं सकते।

'बस, अहा-हा-हा, हवाइयां उड़ने लगीं ? चेहरा फक्।' धारा स्वच्छन्दता से खिलखिला पड़ी; कपूर साहब लज्जित-से हो मुस्काये।

'किसने दिया ?' कपूर ने फिर पूछा।

'क्यों बतायें ?' धारा ने कह अंगूठा दिखाया।

'अच्छा!' कपूर ने आँखें नचा, लाकेट पर हाथ मारा। चिंगलियाँ जो धारा के वक्ष से रपटी, तो धारा के शरीर में सिहरन-सी दौड़ गई। वह प्रेम-वेदना से मुस्कान भरी 'आह!' कर उठी।

'हटो, आये बड़े चालाक!' कह धारा वार बचा गई, पर कपूर ने फिर सफाई दिखाई—लाकेट पकड़ लिया।

'आप तो, ना।' धारा चिल्लाई।

'किसने दिया ?'

'हमारे देवर ने—उदित ने!' धारा बोली।

'उदित ने?'—कपूर ने आश्चर्य किया।

'उदित ने ही। मुझे पहचानता नहीं। जनाब मुझसे प्रेम करने लगे हैं, और यह प्रेम-भेंट। मैंने भी तुम्हारा परिचय नहीं दिया।' धारा, कह कर, शरारत-भरी हंसी हंसी।

'पागल, उसे बताया क्यों नहीं। मैं जाकर...!' कपूर ने धारा को मीठी फटकार बताई।

'उसे चाय पर बुला रही हूँ। अच्छा तुम भेद न खोलना। क़सम खाओ मेरी ...।' धारा ने मुस्कराते हुए, कपूर के दोनों हाथ पकड़, अनुनय की।

'कब बुलाया है ?' कपूर ने मुस्का कर पूछा।

'बस, आते ही होंगे। तुम जाकर बाज़ार से कुछ ले-आओ।'....'तब तक चाय की तैयारी'—धारा बोली।

'अच्छा स्वाँग रचा आज !' कह, कपूर बाज़ार चले गये।

धारा ने कपड़े बदले। नौकर ने अंगीठी जलाई। चाय की तैयारी होने लगी। दरवाजा खटका, तो धारा ने फुर्ती से झाँका—उदित आ पहुँचा। द्वार खोल धारा बोली, 'आगये ? प्रतीक्षा ही कर रही थी। ज़रा बैठें, मैं अभी...।'

'हाँ-हाँ।' कहते हुए, उदित बैठ गया। धारा फिर भीतर चली गई। उदित ने फूलों का गुच्छा मेज़ पर रख दिया। उसका हृदय अज्ञात भावनाओं की गुदगुदी से बासों उछलने लगा। अनेक नवीन कल्पनाओं में मन खो गया। पन्द्रह-बीस मिनट कमरे की सजावट को देखते-देखते गुज़र गये। बीच-बीच में धारा झाँक-झाँक जाती—उदित की ओर मुस्का जाती।

उदित, बैठा, मेज़ पर पड़ा 'सचित्र साप्ताहिक' उलट-पुलट रहा था। कपूर साहब आगये। उदित ने जो देखा तो सिमट गया। फिर भी सँभल कर नमस्ते करते हुए बोला, 'आप, भाई साहब !'

'हाँ, आज सोचा, तुमसे मिलकर बाहर जाऊँगा। धारा जी ने बताया था, तुम चाय पर आ रहे हो।' कपूर ने प्यार से उदित के कन्धे पर हाथ रखा।

'बहुत दिन से बुला रही थीं चाय पर...।' वह बदली-सी आवाज़ में बोला। उसके मस्तक में विलक्षण विचार तिलमिले-से चमक गये।

धारा को भाई साहब जानते हैं! धारा ने इनसे सब कुछ कह भी दिया! अजीब लड़की है—नारी का विश्वास!

'तुम्हारे सहारे आज मुझे भी चाय मिल जायगी, वरना हमारे लिये चाय कहाँ·!' कपूर साहब कह कर मुस्कराये। उदित और भी उलझन में पड़ गया।

'हाँ—आज···।' उदित कुछ कहना चाहने पर भी न कह पाया।

'अरे' धारा जी आपकी प्रतीक्षा में···,' कपूर साहब ने धारा को पुकारा।

धारा सरमर-सरमर साड़ी में आई, तो आनन्द-विस्मय-मुसकान छलकाते हुए बोली, 'और आप भी!—और लीजिये···आप भी खूब!'

धारा को सामने पा, दोनों खड़े होगये।

'यह फूलों का गुच्छा! अहा जी!' धारा ने फूलों का गुच्छा उठा कर गालों से लगा लिया।

'उदित लाये हैं, शायद!' कपूर ने बताया।

'नाइस!' कह धारा ने एक फूल उस में से निकाल उसे मेज़ पर डाल दिया। और बोली, 'और आप क्या लाये?'

'मैं लाया हूँ यह उपहार!' कह कपूर ने हंसते-हंसते उसके गले में लाकेट पहना दिया!

'लाकेट!' उदित शर्म से लाल, हो बोला। उस का हृदय धक्-धक् कर उठा!

'बात असल यह हुई—उसकी एक कड़ी टूट गई; आते-आते··· अभी ठीक करा कर ला रहे हैं।'···अरे आपका परिचय कराना तो भूल ही गई। आप—मि० उदित···। 'धारा की बात पूरी भी न हो पाई कि कपूर साहब बीच में ही बोल उठे, कोई हम अपरिचित तो नहीं हैं। यह तो मेरा छोटा भाई—चाचाजी का बड़ा लड़का···इन्हें जानते तो हो तुम, उदित! यह तुम्हारी भाभी···?'

'भाभी !' उदित के मुंह से निकला, और वह लाज के मारे वहाँ से भागने लगा, तो झट धारा ने पकड़ उसे छाती से कस लिया—'वाह, देवर जी, इस तरह मुंह छिपा कर···बिना चाय पिये ही भागने लगे··· और तुम्हारे भाई साहब कितने खराब हैं—बताया तक नहीं कभी मुझे···। नहीं तो देवर से इतने दिन अनजान क्यों···।' कह कर, धारा खिल-खिला पड़ी। कपूर अलग हंसी में फूट पड़े। उदित शर्म से लाल हुआ जाता। वह कितना चाहता कि पंख लग जायं और वह भाभी की भुजाओं से छूट फुर से उड़ जायं। संकोच के मारे वह सिमटा जाता। धारा ने उसे बालक के समान अपनी बाँह में ले सोफे पर ढुलका लिया। वह लाज-भरी दुल्हन-सा, पलकें गिराये, बैठ गया। कपूर को वह भीतर भेजते हुए बोली, 'ज़रा देखिये न, नौकर चाय अभी तक नहीं लाया !' कपूर हंसते हुए भीतर चले गये।

'क्या लड़कियों की तरह शर्माते हो !···देवर न होकर ननद हुए होते तुम तो, उदित !' कह धारा ने उसे गुदगुदाया।

'भाभी···भाभी, माफ करना···।' उदित शर्माते हुए कातर विनय से बोला।

'पागल !' कह, धारा ने उसके गाल पर प्यार-भरी चपत लगाई, और फिर बाँह में कस लिया।

: ११ :

सोचते-सोचते

आज सुबह-सुबह राधोबाई की राजूभाई से झख-झख होगई। ग़लती बाई की, फिर भी वह अकड़ बैठी—मुकाबिला कर बैठी। बात बढ़ी—दबना राधोबाई को ही पड़ा। बाद में वह अपने पर पछतायी भी—पर राजूभाई के मन में इस झगड़े ने अशान्ति पैदा करदी। बाई महानीच—शैतान—जोड़-तोड़ करने वाली। कई मवाली भी उसके पास आते-जाते। पुलिस के एक-दो आदमियों से भी उसकी मदन-मित्रता—सी.आई.डी.ओं से भी उसका लगाव-जुड़ाव। उनसे भी इसकी पक्की दोस्ती नहीं, इसका क्या प्रमाण? जब न होने का प्रमाण नहीं, तो होने का प्रत्यक्ष प्रमाण। जहाँ अभाव नहीं, तो भाव स्पष्ट। दादर जैसी जगह बात-बात में चाकू चल जाय। राजूभाई का मन अस्थिर।

बाई अपने कमरे में रोटियाँ बना रही थी। परेलकर भीतर झाँकते हुए बोला, 'कसे काम, बाई?'

'आ'''आ—कैसे आज सबेरे-सबेरे?' बाई ने पूछा।

'तूने बुलाया न था कि राजूभाई के यहाँ'''काम दिला दूंगी? कई महीने से खाली हूँ'''अगर तू कह दे तो''''''।' परेलकर ने विनय की।

'आज तो सा'ब बिगड़ बैठे हैं। सबेरे-सबेरे आज न-जाने मेरी बुद्धि को''' न-जाने क्या मेरी मत पर पत्थर पड़ गये'''!' बाई बोली।

'बाई, परमात्मा साक्षी है—तीन दिन से घर में अनाज का दाना नहीं·····साहब बहुत भले हैं—तूही तो कहती थी···।' परेलकर गिड़गिड़ाया।

'पर आज मैं कैसे कहूँ—देखूँगी, अगर जरा गुस्सा उतरा तो····· ।'

'अच्छा तो मैं चलूँ—सब तरफ से जवाब मिल चुका है। अगर तेरी दया हो जाय, ····· ।' कह परेलकर ने हाथ जोड़े।

'ना-ना, वैसे तो मेरा कहना टालेंगे नहीं; शाम तक हो जाना, एक-दो बार·····मौका देख कर, ले चलूँगी ।' बाई ने उसे आश्वासन दिया। बाई भी उसे बाहर तक पहुँचाने चली।

कुछ दिन से इस मकान के, जहां राजू रहता है, सी. आई. डी. बहुत चक्कर काट रहे हैं। इससे राजू का मन भय से और भी मुँह छिपाने लगा। दो आदमी पगड़ी लेते पकड़े गये—एक कत्ल के अपराध में बीस साल को जेल गया। तभी से इस बिल्डिंग पर सी. आई. डी. की कड़ी नजर है। राजूभाई अपने पर रह-रह कर पछताता, किस नीच के मुहँ लग बैठा? बैठे-बिठाये मुसीबत—न लेना, न देना। सोचते-सोचते मन आशान्ति और घबराहट की धुंध में भटकने लगा।

परेलकर राजू भाई की ओर गौर से देखते हुए गुजरा। बाई, चमकती पुतलियों और चंचल हाव-भावों से उससे बातें करती हुई उसे बाहरी द्वार तक पहुँचाने गई। उसने जाते-जाते राजू की तरफ देख-देखकर कई बार पीक थूकी। एक-दो बार ज़मीन पर चप्पलें रगड़ीं। राजू की आशंका विश्वास में बदलने लगी। यह आदमी निश्चय ही सी. आई. डी.! पुलिस के हथकण्डे कौन नहीं जानता। न जाने क्या मुसीबत खड़ी हो जाय। और इस बाई की बदमाशी तो देखो, कल तक कितना मस्का लगाती थी—रात-दिन खुशामद करती। ही-ही, खी-खी करती। यहां तक, अनेक बुद्धू समझते—मेरे प्रेम में पागल है।

आज कहाँ मर गया वह नालायक नानेकर?—कहता था, यार यह बाई तो सचमुच·····वोई·····बात! अब आके देखे, गधा कहीं का आह बाई, मैंने तेरा क्या बिगाड़ा? अरे धोखेबाज, विश्वासघतिनी, अगर मैं पुलिस के चक्कर में आ गया, तो तुझे क्या मिलेगा! अब क्या होगा! अगर पुलिस ने फँसा लिया, तो?

सोचते-सोचते राजूभाई की बेचैनी बढ़ने लगी। हृदय धक्-धक् करने लगा। राजू पड़े-पड़े भयभीत, कल्पना के खंडरों में छिपता फिरता था। पग-चाप सुनी, तो हड़बड़ा कर संभला—आगया क्या कोई मदूँद·····हे भगवान्!

'उदास कैसे?' सरन ने भीतर आते हुए कहा।

आओ·····आओ, बड़ा सूना-सूना लगता है। तबीयत कुछ····· दिल जरा·····जी·····में आता है, घर चला जाऊँ। चालीस लाख मानवों में अकेला—गहासमुद्र में एक बूंद!'

'यह कौन-सी नई मुसीबत?'

'आज सवेरे -सवेरे किसका मुँह देखकर उठा। बाई से झख-झख हो गई। और वह ऐसी नीच·····तुम तो जानते ही हो·····कई भवालियों ने·····और सी. आई. डी. भी·····अजीब औरत है!' राजू भयभीत-तिरस्कार से बोला।

'नहीं, मुझे कुछ भी मालूम नहीं।'

'तुम न जानो, तब भी कई भवालियों से उसकी दोस्ती है—और कई सी. आई. डी. भी·····। ·····बड़ी खराब औरत—एक नम्बर!'

'हुँ—तब?' सरन मुस्कान-भरे ओठ चबाते हुए बोला।

'एक सी. आई. डी. मेरे पीछे लगा दिया। और पुलिस के हथकंडे तो... मुझे फँसाने के लिये। कई बार आ चुका। आज बैठे-बिठाये,

क्या मुसीबत मोल ले ली ! और तुम तो जानते ही हो···मैं अकेला । न कोई संगी न कोई साथी !' राजूभाई धीरे-धीरे बोले ।

'कैसा सी. आई. डी., कोन सी. आई. डी. ?·····ऐसी की तैसी····· !" सरन रूखे स्वर में बोला !

'हुश—जरा धीरे·····।' कह, राजू ने उठ कर खिड़की की आड़ से झाँका और फिर बोला, 'तुम समझते भी हो ? सरासर सी. आई. डी. ! जब तुम समझते नहीं, तो जो मैं कहता हूँ, उस पर विश्वास करो । यह औरत बड़ी बन्नैत है ।'

'इसका प्रमाण क्या,-कि सी. आई. डी. से इसकी दोस्ती है ?' सरन ने पूछा ।

'इसका क्या प्रमाण कि दोस्ती नहीं है । जब 'नहीं' का प्रमाण नहीं, प्रत्यक्ष प्रमाणित है ।'

'वाह रे लार्जिशियन...तर्क-शास्त्री !' कह कर सरन खिलखिलाया । और इतने ही में 'वही' व्यक्ति साइकिल लिये आता दीखा । राजू ने सी-सी कर सरन की कमर में उँगली गड़ाई । वह समझा नहीं । आगन्तुक बाई के कमरे में चला गया ।

'देखते भी हो—बुद्धू ! वह अभी-अभी···।' राजू सरन को झिड़कते हुए बोला ।

'वह आया था ?' सरन ने चमक कर पूछा ।

'सो गये थे क्या ?...बाई के कमरे में ।' राजू ने धीरे से उसके कान में कहा ।

सरन चौखट पर खड़ा हो गया । वह बाई के साथ बाहर आया । दोनों ने मुस्का कर कमरे के भीतर दृष्टि फेंकी । बाई उसके साथ द्वार तक आई । वह साइकिल उठा, एक बार फिर कोने में झुक, एक नजर राजू पर डाल, कुछ फुस-फुस कर चला गया । सफेद धोती, मराठी

चप्पल, काली किश्ती टोपी, खुले गले का कोट—बिलकुल सीधे-सादे नागरिक कपड़े ।

सरन आकर राजू के पास बैठा ।

'कहो, है न ? मान गये अब तो ? विश्वास ही न करते थे । मर्दूद मुझे कैसे पहचान-पहचान कर देखता है । फँसाने की ताक में है... है न असल सी. आई. डी. ? बच्चू हम भी कोई बतासा नहीं कि घोल कर पी जाओ !'

'ऐसी की तैसी सी. आई. डी. की,...पागल !' सरन फिर हँसा ।

'अरे, अब भी शक ? जब मुझे फंसा देगा किसी मामले में, तब विश्वास आयगा क्या ?' राजू ने विश्वास करने की अपील—सी की ।

'यों-ही मान लूँ ? बस तुमने कह दिया.....। कैसे समझ लिया वह सी. आई. डी. है ?'

'सी. आई. डी. पुलिस की वर्दी तो पहनते नहीं—नागरिक वेश में रहते हैं, यह मानते हो ?'

'हाँ ।'

'यह आदमी पुलिस की वर्दी में नहीं, मानते हो ?'

'हाँ ।'

'तब साफ—सी. आई. डी. ।' राजू अपने तर्क पर चमक उठा ।

'खूब ! क्या शानदार तर्क !' सरन ने उपहास किया ।

उसकी नासमझी पर राजू को आश्चर्य भी हुआ, और तरस भी आया । समझाने के लिये सबल तर्क देता हुआ बोला, 'यह तो जानते हो कि सी. आई. डी. पुलिस-कार में नहीं आती, तो किस लिये ? इसलिये कि पब्लिक इनको पहचान न ले । इसी लिये इनको साइकिल दी जाती है, यह जानते हो ?'

'हाँ।'

'साइकिल इसके पास है—सी. आई. डी. हुआ या नहीं ! —अब बोलो।'

'सामने, भाजीवाले को कभी पुलिस ड्रेस में देखा है ?' सरन ने राजू का विश्वास करने की बजाय प्रश्न किया।

'नहीं।'

'कभी यह आदमी पुलिस-कार में जाता-आता है ?'

'नहीं। इस से मतलब क्या तुम्हारा ?' राजू ने जरा चिढ़कर कहा।

'इसके पास साइकिल है ?'

'हाँ—हाँ, है तब ?' राजू और चिढ़ा।

'तो—वह भाजीवाला है पक्का सी. आई. डी.—मिलाओ हाथ !' कह कर, सरन स्वच्छन्द हँसी में फूट पड़ा।

'बस, ही-ही कर दिया !' राजू मुंह बिगाड़ कर बोला, और सरन उसकी बिगड़ी सूरत देख और भी हँसा !

'क्यों—यह सी. आई. डी. क्यों नहीं ?'

'यह तो सब्जीवाला है, तुम खुद कहते हो। वह आदमी क्या सब्जी बेचता है ?' राजू ने कहा !

'इसका मतलब यह—पुलिस कार में न चलने वाला, पुलिस ड्रेस में न रहने वाला, साइकिल रखने वाला, सादे नागरिक कपड़े पहनने वाला, अगर सब्जी न बेचे, तो सोलहों आने सी. आई. डी. !'

'तेरा सिर, बेवकूफ—हर बात की मजाक ?' राजू चिढ़कर बोला।

'तो, कहो भी ?' सरन ओंठ काटते हुए बोला।

उस दिन, उस सी. आई. डी. को देखा था ?'

'हाँ।'

'चप्पल कैसी थी ?'

'अँगूठा-फसाऊ—मराठी।'

'और यह कैसी पहने है ?'

'वैसी ही।'

'तब, हुआ न सी. आई. डी. ? अब आया खोपड़ी में ?'

'हजारों आदमी ऐसी चप्पल पहनते हैं। वे सब के सब सी. आई. डी. हैं ?—क्यों ?'

'अजीब बेवकूफ से पाला पड़ा। अरे, सब इस बाई के पास आते हैं क्या ? सब मेरी तरफ घूर-घूर कर देखते हैं क्या ? सब पान की पीक थूकते हैं क्या ? सब मेरी ओर देखकर चप्पल रगड़ते हैं क्या ? —तुम्हीं बताओ, इसके सिवा और कौन आया गया ?' राजू ने रोश में कहा।

'शाबाश, राजूभाई ! यह नई पहचान और मालूम हुई !' सरन शरारत भरी मुस्कान से बोला।

राजू ने इन सब का सांकेतिक अर्थ बताते हुए समझाया, 'घूर-घूर कर देखना, यानी मेरी पहचान आँखों में बसाना। पीक थूकना, अर्थात् मुझे फँसाने की चुनौती देना। चप्पल रगड़ना, मतलब कि तुम्हें पीस डालूँगा, बच्चू—तुम्हें मिट्टी में मिला दूँगा। तुम्हें बरबाद कर दूँगा। नालायक, तुमने समझा क्या ?' चप्पल में फँसे अँगूठे को बार बार निकालने-फँसाने का अ बिल्कुल स्पष्ट है ?'

'क्या ?' सरन ने भोलेपन से पूछा

'पुलिस के फंदे में फँस कर पता चलेगा आटे-दाल का भाव, बेटा ! गर्दन ऐसी फँसेगी जैसे अगूँठा...लाख कोशिश करो तो भी ...। साफ तो मतलब है, फिर भ औभार ज ए अक्ल में ही नहीं आता !'

'गजब कर दिया ! सी. आई. डी. का यह शानदार संकेत-कोश ! क्या दार्शनिक दिमाग पाया है तुमने भी, गार !' कह कर, सरन हँसते-हँसते पलंग पर गिर पड़ा ।

उसकी हँसी पर राजू ने ऐसा मुँह बिगाड़ा जैसे कैस्ट्राइल पी लिया हो । जो आदमी इतने तर्क, प्रमाण, और पहचान से भी न माने, उसका दिमाग है कि सड़ा खरबूजा ?

सरन खी-खी कर हँस रहा था । राजूभाई उसकी हृदय-हीनता, ना-समझी और लापरवाही पर रोष में भरे बैठा था ! तरस-भरे आश्चर्य की बात तो यह, इतना उचित, सबल, युक्तियुक्त तर्क देने पर भी उसकी खोपड़ी में न आया । राजूभाई अब समझाने की अपेक्षा क्रोध-भरी फटकार देने वाले थे, ऊपर से एक छोकरी आकर बोली, 'तुमको हमारा बाप बुलाता है ।' राजू भाई अजीब असमंजस में पड़ा—नई मुसीबत ! सरन ने हँसते हुए समझाया, 'दिमाग ठिकाने करो । पागल-पन छोड़ो । खाओ-पीओ । आराम-करो, चैन की बंसी बजाओ । हो आओ, कहता क्या है ?···शाम को सैर को चलोगे न शियाजी-पार्क ?

× × ×

सरन चला गया । राजू छोकरी के साथ विभिन्न विचारों में डूबते-उतराते ऊपर गया ।

'माफ करना—आपको तकलीफ दिया । हँ-हँ-हँ-हँ, आजकल दिन बड़ा खराब आ गया ।' छोकरी का बाप बोला । राजू का माथा ठनका—मामला जरूर...। सँभल कर बोला, 'कोई बात नहीं ।'

'आप अपना कमरा दे रहे हैं क्या ?'

'नहीं...तो...कौन कहता है ?

'बात असल यह है आजकल साला सी. आई. डी. बड़ा चक्कर लगाता है इस बिल्डिंग में, कल हमें ही फँसाने की चेष्टा किया

'भैया का पता पूछता था। मुझे तो मालूम नहीं। कह दिया, मुझे क्या पता।'

'ठीक किया। छोकरी की मां ने देखा तो मुझको बोला। आप सा'ब नया है, अभी। हँ-हँ-हँ-हँ, माफ करना—यह बम्बई है। इसी लिये तकलीफ दी, माफ करना। मालूम है, वह कौन है?'

'सी. आई. डी.—मैंने तो देखते ही...। आया, बच्चू, हमें चलाने।' राजू ने अपनी चातुरी पर हँसते हुए कहा।

'हाँ, इसीलिये मैंने आपको बुलाया। इन शैतानों से सँभल कर हँ-हँ-हँ—माफ करना।'

'मैं इन को बोली, सा'ब अभी नया छोकरा है, उसको बता दो। देखो सा'ब उस गूँगे को फँसा दिया न इस नर्स ने। हम तुम्हें तो कभी न फसने देंगे।' छोकरी की अम्मा बोली।

'आप की दया—आप बड़े हैं। आप ही देख-भाल न करेंगे तो —। अच्छा मैं चला। धन्यवाद।' कह कर राजू चलने लगा, तब उसके कानों में आ गिरा—'माफ करना'।

राजूभाई अपने कमरे में आ गया। अब विश्वास और भी जम गया। उस बुद्धू, सरन को कितनी बार समझाया, मजाक बनाता रहा! मैं तो उसे एक सच्चा और अच्छा मित्र समझता था। पर, मुसीबत में कौन काम आता है! इस स्वार्थ की दुनिया में कौन किसका! यह तो न हुआ न कि इस मुसीबत से निकालने की कोई तरकीब सोचे··· यह तो न हुआ—धीरज दे। उलटे 'मुझे' उल्लू बनाने लगा। हृदयहीन—पापाग्—स्वार्थी!

सोचते-सोचते राजूभाई को ऐसा लगा, पुलिस ने उसे किसी मामले में फंसा लिया। पुलिस आई और उसको पकड़ ले गई। मुरारजी ईसाई हो, या पंतजी गृह-मन्त्री, उनको क्या पड़ी··· अफसरों की ही

सब सुनते हैं। आह—आज क्या होगा; क्या सचमुच ? मै कम्युनिस्ट नहीं·····मैं कभी कम्युनिस्ट नहीं ! पुलिस·····पुलिस, अरे भाई, मुझे क्यों··· हवालात मे, क्यों ? हे भगवान् !

राजू का दिल धक्-धक् करने लगा ! तबीयत ज्यादा घबराने लगी। मन ठिकाने लाने के लिये ग्रामोफान बजाया। भगवान की फिल्मी भक्ति तबे के साथ गूंजने लगी—

बस तेरा ही एक सहारा !
बस तेरा ही एक सहारा !
तुम निराश की आश-किरन हो
तुम बिन कौन हमारा !
डगमग डोले मोरी नैया·····
तुम बिन कौन खिवैया।
तुम ही बनो पतवार मुरारी,·····
पार लगाओ कन्हैया !
छाया अंधेरा, राह न सूझै·····
पलको रो दूर किनारा !
बस तेरा·····ही·····।

बार-बार रिकार्ड बजाता—साथ स्वयं भी गुनगुनाता जाता। राजू गुनगुना रहा था—तुम निराश की·····। द्वार खटका। राजू का दिल धक् से रह गया ! 'हे भगवान्, गोपीनाथ,·····चीर-हरैया' जपते हुए अकस्मात् का सामना करने उठा। बाहर झांका तो मरन फिर धूर्त मुस्कान लिये मौजूद !'

देखते-ही राजू बरस पड़ा, 'मुझे बुद्धू समझता है ! जैसे सारी अक्ल का ठेका तूने ही लिया हो ! नालायक कहीं का—अब तो बात साफ हो गई, ना ?'

'क्या ?' बैठते हुए सरन ने पूछा।

'वही, छोकरी का बाप कहता था—राजू नीचे स्वर में बोला।

'क्या ? मैं समझा नहीं।' अनजान बनकर सरन ने पूछा।'

'ही-आइडी !' राजू ने सरन के कान में कहा, और सरन सुनते-ही कहकहा लगा कर हँसा।

'तुम समझते क्या हो अपने को—बेवकूफ !' बस खी-खी···ही-ही·····।' राजू गर्म होकर बोला।

'सच राजू भाई, तुम्हारा इलाज कराना पड़ेगा।'

'इलाज करा अपने दिमाग़ का। सबको बेवकूफ समझता है। छोकरी के बाप तक ने बुलाकर समझाया। उसकी माँ तक ने कहा 'वही' है, और जनाब को मजाक सूझी है ! तुम पर मुसीबत पड़ती, तो बेटा, बम्बई छोड़ जाते·····। यानी यहाँ तो किन-किन मुसीबतों का सामना·····पल-पल काटना पहाड़ और आप जनाब·····। राजू ने करुणा-मिश्रित क्रोध में कहा।

सरन और भी ज़ायका लेने के लिये गम्भीरता और सहानुभूति का अभिनय करते हुए, वेदना-विह्वल वाणी में बोला, 'आह-मित्र, काश मैं हृदय चीर कर दिखा सकता ! कैसे बताऊँ। मैं व्यथित हूँ, हृदय चीख़-चीख़ उठता है—मन में हाहाकार मचा हुआ है ! आह कभी सपने में भी न सोचा था—दिन-दिहाड़े तुम पर यह वज्र-प्रहार होगा ! हाय, मेरे प्यारे·····। मैं सच कहता हूँ, कलेजा कुकड़ूँ-कूँ कर उठता है—

'जेहि न मित्र के दुखहिं दुखारी,
सो नृप अवसि नरक-अधिकारी।'

—और कह कर, सरन राजू से लिपट कर 'आह' ! कर उठा। राजू ने उसे एक तरफ हटकर कहा, 'मैं तेरा सिर तोड़ दूंगा, नालायक !'

'अब तो दोस्त, सी. आई. डी. के लिये रास्ता और भी साफ़!' कह, सरन फिर ज़ोर से हँसा।

राजू क्रोध में कुछ कहे कि साइकिल की घन्टी बजी। दोनों संभले। साइकिल वाला आदमी साइकिल से उतर कर, कमरे के पास से गुज़रते हुए, एक मुस्कान उधर फेंक गया।

'देखा, नालायक़ कैसी हँसी हँसता है—जैसे मुझे फँसा ही लिया हो!' राजू ने सरन को सुनाते हुए कहा।

'यार, तुम भी इन शैतानों की एक-एक हरकत को नाक की बात में ताड़ जाते हो। सी. आई. डी. के भी सगे बाप।'

'हिश — ज़रा धीरे! अब तो यक़ीन हो गया? साला, आज पचास चक्कर काट चुका! पर हम भी बेटा को ...।' भीतर घुकर-पुकर होते हुए भी, बाहर से राजू ने साहस प्रकट किया।

इतने में बाई आगई! उसके पीछे वह आदमी भी। राजू संभला, सरन भी विचलित हुआ।

'सा'ब, यह आज कई बार आया! मैंने टाल-टाल दिया। अब पकड़ मैं आये सा'ब। बाई बोली, और उसने एक काग़ज़ राजू की तरफ़ बढ़ाया। राजू घबराया। 'ओह', साला वारन्ट भी ले आया। हे भगवान—हे-हे पवनसुत, हनुमान् तेरा नाश हो!...मक्कार! विश्वास-घात! टाल-टाल दिया, और यह क्या! Frailty thy name is 'woman —आह, वारन्ट भी?

'यह क्या?' सरन ने काग़ज़ लेते हुए पूछा।

'इन सा'ब के लिये है यह।' परेलकर ने संकेत किया। राजू का हृदय धक-धक्। कोई केस बना लिया क्या? हाय 'वारन्ट भी—हे भगवान्!

'क्या है, बता भी!' सरन ज़रा ऊँची आवाज़ में बोला—राजू

और भी घबराया। सरन पर मन ही मन बिगड़ा—। बेवकूफ़...अकड़ दिखाता है। मरूँगा तो मैं।

'कह भी तो, भई,' सरन ने फिर नम्रता से पूछा। परेलकर ने गिड़गिड़ा कर सरन के पैर पकड़ लिये—सरकार, तीन दिन से घर में दाना नहीं। नौकरी के लिये अर्ज़ी। अपने पैरों में जगह दे दें।

सरन हँसी न रोक सका।

'अ-ह-च्छा—हें हँ-हँ, तो रोता क्यों है? कल आना सवेरे।' सरन मुस्कराते हुये बोला। राजू के मुँह पर अनेक-भाव लहरें नाच गईं।

हँ-हँ-हँ-हँ, मैं तो पहले ही कहती थी—सा'ब कभी किसी को...' कह, बाई उसे लिवा ले गई।

'यार, मान गये राजू,' तेरा लोहा! यानी, साले ने क्या बहाना निकाला—असल सी. आई. डी. है!' कह, सरन ने गुदगुदाया?

★

: १२ :

हनुमान् की दुम

आज रात, रामचरित की एक रोमांचकारी, अनोखी और नवीन घटना की लीला खेली जायगी। ऐसी घटनाएं जनता के सामने आती कहाँ हैं! हनुमान् जी आज अहि-रावण का वध कर, राम-लक्ष्मण का त्राण करेंगे। नगर-भर में ढोल पीट-पीट कर, घण्टा बजा-बजा कर हनुमान जी के भक्तों—बाल-बन्दरों ने आज की शानदार लीला का ढिंढोरा पीट दिया। दर्शकों के ठट्ठ-के-ठट्ठ लग गये। लीला-भूमि में तिल धरने को भी जगह नहीं—दूर-दूर के ग्राम-निवासी भी छन्नों में रोटियां बाँध आ गये।

अहि-रावण साधारण दानव तो नहीं—रावण का भी चचा! रावण ने तो सीता को ही चुराया, अहि-रावण साहब राम-लक्ष्मण, दोनों,को ही उड़ा ले गये! दल में शोक के बादल छा गये। बूढ़े जामवन्त की जवाँ-मर्दी ग़ायब हो गई। नल-नील की अक्ल चकरा गई, सुग्रीव की शूरता चौकड़ी भूल गई। आख़िर सबने मिल तय किया कि बन्दर-कुल-कमल-दिवाकर, कपीश, बाल-ब्रह्मचारी, पवनसुत, हनुमान् को भेजा जाय—जो राम-लक्ष्मण का उद्धार करें और भक्त-जन के धड़कते दिलों को ढाढस दें। इसी घटना की रामलीला आज की जायगी।

हनुमान् जी को आज दानव-दल-नायक अहि-रावण से युद्ध करना है। इसलिये हनुमान् जी ने भी आज विशेष तैयारी की। एक्टिंग में रंग लाने और आड़े समय पर जोश जगाने के लिये भिचोनी भंग की एक

गोली भी निगल ली। रूप भरने से पहले २१ दण्ड खींचे और ५१ बैठकें भी कीं। खूब तबीयत से मालिश की। मुष्टिका को प्रेम से तेल रगड़ा। कस कर जाँघिया पहना और पीतल के चेहरे को, बासो रगड़-रगड़ कर, चमाचम कर दिया। चेहरा चमक उठा। बांस की लचकदार खपच्ची की दुम पर नया भड़कीला, लाल तूल लपेटा, और उस पर चमकदार सफेद गोटा। न-जाने क्या मौका, देश विराना, अनजान दुश्मन, मायावी, दानव अहि-रावण! अगर लड़ाई में, पूँछ ही पकड़ कर खींचले, मेरी 'इंसल्ट' तो हो गई—भले ही व्यासजी रामायण के प्रमाण दे-देकर आरती के बाद उसे डाटें-फटकारें। जनता तो 'हीं-हीं' 'खीं-खीं' कर देगी, अहि-रावण का यह कार्य चाहे जितना गैरकानूनी हो। आज दर्शक भी हजारों की संख्या में। अगर कोई ऐसी-वैसी बात हुई, तो अगले कई सालों तक हनुमान् बनने का 'चान्स' हाथ से जाता रहेगा।

हनुमान् जी पूरी तरह तैयार। व्यासजी काफी देर से चौपाइयाँ गा-गाकर भीड़ के ध्यान की गाड़ी मुख्य लीला के निकट ला रहे थे। समय हुआ, परदा खुला और हनुमान् जी ने अहि-रावण के घर जा ललकारा—कहाँ है, रे दानव लंका को जला, राख करने वाला! राम-सेवक हनुमान् आज तुझे सुरपुर पहुंचाने के लिये आ पहुँचा। 'मिसेज अहिरावण जी, किवाड़ की ओट से बोलीं, 'हे मूर्ख बन्दर, रनवास में क्या रौब दिखाता है! नारियों पर अपनी वीरता का सिक्का जमाता है—उस मन्दिर में जा, जहाँ उन दोनों बनवासी छोकरों को काट कर काली मैया की भेंट चढ़ाया जा रहा है। वहाँ जाकर मेरे पति के हाथ से तू भी मारा जा·····।'

'हे देवी, वह मन्दिर·····?' हनुमान् जी मन्दिर का अता-पता पूछने ही लगे थे कि व्यासजी ने मूँछों के पंख मार, पलकों को फड़ाक से गिरा, संकेत किया और चौपाई गानी शुरू की—

पर-नारी लखि दोष अनन्ता,
किलकि चले हर्षित हनुमन्ता।

हाँ—हनुमन्ता,·····रामा हो रामा! चौपाई सुन हनुमान् जी को होश आया—अरे ब्रह्मचारी होकर पर-नारी से वार्तालाप! तुरन्त किलकारी मार, जोश में उछल, हनुमान् जी पर्दे के बाहर आ गये। चबूतरे पर आ, कभी तो पवन-सुत, अंजनीकुमार किलकारी मारते, उछलते-कूदते—और कभी जोश में मुष्टिका घुमाते। कभी दुलकी चाल दिखाने, और 'बोल सियावर!' कह, छलाँग लगाते। कभी अपनी दुम हिला कर दर्शकों को हँसाते। भंग की गोली पेट में ज्यों-ज्यों घुलती जाती, त्यों-त्यों हनुमान् जी की हरकतें भी बढ़ती जातीं। बहुत देर तक हनुमान जी दर्शक-समाज के लिये मनोरंजन का साधन उपस्थित करते रहे।

पर्दा खुला। जय-जयकार के गगन-विकम्पित स्वर गूंज उठे। हनुमान् जी भी गला फाड़, पूरी ताकत लगा चिल्लाये—बोल सियावर रामचन्द्र की जय! और दर्शक-समाज ने भी पूरी ताकत लगा, हनुमान् जी का साथ दिया। मंदिर का दृश्य—अहि-रावण, राम-लक्ष्मण के हाथ पकड़े, काली के सामने उपस्थित हुआ। एकदम दोनों भाइयों को देवी के सामने कर, उसने खड्ग तान, राम-लछमन का सिर काटना चाहा, और हनुमान् जी उछल कर भीतर। सड़ाक से दुमा अहि-रावण की कमर पर पूँछ का कोड़ा मारा—वह 'सी-सी' कर उठा, और दर्शक-मण्डली हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई—बोल, पवनसुत हनुमान् की जय!

अहि-रावण ने भी पैंतरा बदल, हनुमान् जी पर वार किया। हनुमान् जी सफाई से बचा गये, और कस कर अहि-रावण की पीठ पर लात जमाई। अहि-रावण संभलते-संभलते भी एक तरफ को अध-गिरा हो गया। उसने दायाँ हाथ जमीन पर जमा, गदा संभाली। राम-लक्ष्मण फुर्ती से कूद हनुमान् जी के कंधों पर। बजरंगबली की जय—श्रीरामचन्द्रजी की

जय·····बोल लखनलाल·····की···आदि के धार्मिक नारों से लीला-भूमि गूँज उठी।

हनुमान जी बाहर आ, किलकारे। अहि-रावण भी तैश में आ, उन पर झपटा। हारमोनियम और तबले पर युद्ध की गत बजने लगी। बालक जोश में तालियाँ बजाते। दर्शक वीर-रस में उछल-उछल पड़ते। दोनों वीर, बारण्ड, उद्दण्ड—प्रचण्ड युद्ध आरम्भ! वार पर वार होने लगे·····। दर्शक-जन धड़कते दिलों, सहमती साँसों, एकटक अपलक नयनों से युद्ध देखने लगे। अहि-रावण जब कसकर हनुमान् जी पर वार करता तो भक्तजनों का हृदय धक्धक् कर उठता—भय से वे काँप जाते। हनुमान् जी जब किलकारी मार अहि-रावण पर झपटते, तो सब उत्साहित-आनन्दित हो जाते। सभी मनाते—हे भगवान् अहि-रावण मारा जाय! भगवान्, राम का त्राण हो!

हनुमान् जी युद्ध की गत पर मस्त हो गये। किलकारी मार अहि-रावण की कमर पर मुष्टिका-प्रहार किया। अहि-रावण, क्रोध में लाल, हनुमान् जी पर झपटा, और उनकी लहराती झिलमिलाती दुम पर उसने हाथ चलाया। तुरन्त व्यास जी चिल्लाये—

ज्यों बालक को प्रान पियारा···।
तुम बचाउ हनुमान् उदारा····।
···मान् उदारा···।
रामा···हो···रामा···

चौपाई सुन हनुमान् जी का नशा हिरन हुआ। संभले—पूंछ पकड़, पैंतरा बदला। जोर से किलकार किया—धीरे-से मुष्टिका प्रहार किया। अहि-रावण "आह!" कर, फिर संभला—जनता में हर्ष-ध्वनि उमड़ पड़ी। अहि-रावण ने फिर संभल, वार किया। हनुमान् जी ने पैंतरा बदल अपने को बचाया। उनकी दुम अहि-रावण की तरफ जो घूमी कि उसने सफाई से उसे पकड़ कर झटका लगाया। राम-लक्ष्मण गिरते-गिरते बचे।

हनुमान् जी की कमर में भी झटका लगा। हनुमान् जी ने पैंतरा बदल, फुर्ती से उसकी कमर पर मुष्टिका प्रहार किया। वह धराशायी हो गया! दुम हाथ से बाहर! धराशायी (अहि-रावण) को एक लात व्याज में और जमा, हनुमान् जी किलकारी मार कर उछल पड़े। चारों ओर जय-जय कार···आनन्द ही आनन्द···हर्ष-ध्वनियाँ और प्रसन्नता के फव्वारे। व्यासजी विजयोल्लास में पोपले मुंह से जुगाली करते हुए गाने लगे—

अतुलित बल अञ्जनी-कुमारा ···।
आ···ऽ···ऽ···कुमारा ···।
पवन-पूत अहि-रावण मारा ···।
रावण···मारा····

जनता भी भक्ति-विह्वलता में गा उठी—

अहि-रावण मारा···पवनपूत अहि-रावण मारा···।
अहि-रावण मारा·····रावण मारा·····।

हनुमान् जी अपनी प्रशंसा सुन, जोश में किलकारी भरते—उछलते-कूदते, और मुष्टिका घुमाते। भंग की तरंग—नशा खिल उठा, जमीन घूमने लगी। विजय का उन्माद—नसों में गुदगुदी-सी होने लगी—पैरों के तलुए खुजलाने लगे। प्रशंसा की प्रफुल्लता—रोमांच खड़े हो जाते! नशा बढ़ता जा रहा था—गोली अपना जादू दिखाने लगी। कान बजने लगे···आँखों के सामने शाम का धुंधलापन रेंगने लगा। फिर कानों में प्रशंसा की अमृत-बूंदें पड़ीं...(रावण) मारा···पवन-पूत अहि-रावण मारा।

हनुमान् जी को जोश आया। किलकारी लगा, उछलने-कूदने लगे। राम-लक्ष्मण गिरे-गिरे से होते, कसकर हनुमान् जी की गर्दन में बाँहें डाल सँभलते—हनुमान् जी नशे में और भी जोश खा, कभी सरपट तो, कभी दुलकी चाल दिखाते। जनता में खुशी का ज्वार। प्रसन्नता की फुर्ती और भंग की तरंग में हनुमान् जी फिर किलकार, मुष्टिका घुमाते हुए, पर्दे के भीतर जाने लगे। घुसने से पूर्व 'उइ—आ', कह मुष्टिका घुमाई, और

वह कट से श्री रामजी के मस्तक पर पड़ी ! श्री रामजी दर्द से चीखे। और गद्दे से नीचे गिरे। हनुमान् जी लक्ष्मण को ले, उछल कर परदे के भीतर। भंग की तरंग, किसे सुनाई दे चीख-पुकार।

रामजी ने पी-पी करनी शुरू की। 'हाय-हाय'···कह, व्यासजी दौड़े। तबलची झपटा। 'भगवान् राम···भगवान् राम'—शोर मचा, पीड़ा से परेशान भक्तजन भाग आये। हुल्लड़ मच गई। रामजी 'पी-पी' कर रोते—बालक-बच्चे तालियाँ पीट 'ही-ही-खी-खी' करते। भीतर भी अजीब अराजकता। हनुमान् जी को फटकारें पड़ीं। हनुमान् जी का नशा काफूर—यह क्या ? अहि-रावण सचमुच ही तो नहीं मर गया ?!···शायद मुष्टिका कस कर···। उफ़ नशे में यह क्या हो गया। परदे से मुंह निकाल हनुमान् जी ने बाहर झाँका—लोग 'हो-हो' 'हो-हो' कर खिलखिला पड़े। हनुमान् जी ने फिर कछुए के समान अपना मुंह भीतर समेट लिया।

व्यासजी ने रोते हुए श्री रामजी को गोद में उठाया, भीतर आये। हनुमान् जी भयभीत सकपकाये से सामने आ खड़े हुए। श्री रामचन्द्रजी रो-रोकर परेशान हुए जाते। चोट से अधिक, अपमान का घाव हृदय में ही संता। रामलीला-मण्डली जमा होगई। सब गमाते—राम और सिसकियाँ भर-भर रोते !

'हे हे अंजनी कुमार, आज यह क्या भया ! जीवन जनम राम की सेवा में गँवाया, और अंतिम बार यह अपजस कमाया !' व्यासजी ने भक्तिभाव से कहा।

'देख तो—भगवान् राम कैसे सिसक कर रो रहे हैं !' अङ्गद ने भी ताना मारा।

'मेरे सिर कलङ्क लगना था—और क्या ! जीवन-जनम भगवान् की सेवा में गँवाया और अन्तिम बार यह अपजस हाथ लगाया !' अपराधी के समान हनुमान् जी ने सफ़ाई दी।

'आज अहि-रावण मारने को मुझे ही भेज देते !' अंगद ने हनुमान जी पर जलन भरी दृष्टि फेंकते हुए कहा।

'मैंने क्या जान बूझ कर',... हनुमान् जी बोले।

'भाँग पीकर भी कोई लीला करता है—आज भाँग काहे को पी, थी ?' प्रीम्टर बोला।

'भांग के नशे में...।' अंगद कुछ कहे कि व्यासजी 'थाली-कुमार ...!' कह, अंगद को मौन रहने का संकेत कर, श्री रामजी को मनाने लगे—हाय भगवान् कैसा गूमड़ा पड़ गया! सेवक से अपराध भया,....पर श्री रामचन्द्र जी अब भी 'पी-पी' कर रोते रहे।

व्यासजी थाल में लड्डू ले, उन्हें गोद में बिठा, एक ओर बैठ गये।

'ले-ओ न भगवान...अच्छे रामजी, एक लड्डू !' व्यासजी उनके मुंह में लड्डू ठूंसने लगे, तो उन्होंने सिसकियाँ लेते हुए मुंह एक ओर कर लिया।

'अब रोता है। संभलकर क्यों नहीं बैठा। मैंने तो हनुमान् जी की गर्दन कस कर पकड़ रखी थी।' लक्ष्मण ने मूंगफली का दाना मुंह में डालते हुए कहा।

'लखन-लाल, भगवान् को चिढ़ाते हो—नारायन-नारायन ! जिनके कारन अवध त्याग, बनवास लिया...नहीं-नहीं, लछमन भैया की बातों पर ना जाओ। लो, खाओ न...।' लक्ष्मण को मनाकर व्यासजी ने राम को समझाना आरम्भ किया।

बाहर हो-हल्ला मचा था। रामजी सुबक-सुबक कर रो रहे थे व्यासजी उनके मुंह में लड्डू ठूंसने का सस्नेह प्रयत्न कर रहे थे। श्री रामचन्द्रजी के पिताजी को मालूम हुआ कि उनका लड़का हनुमान् जी के कंधे से गिर कर चोट खा गया है, और इस काण्ड का कारण है हनुमान् जी की मूर्खता—उन्हीं के मुष्टिका-प्रहार से वह भूमि पर आ गिरा ! वह बड़

बकते हुए भीतर घुस आया। देखा, लड़का अभी तक सिसकियाँ ले-ले कर रो रहा है, तो उसे बड़ा क्रोध आया।

'कहाँ है यह हनुमान् का बच्चा ? लौंडे को मारने का ढंग किया होता। तेरी ऐसी की तैसी, तेरे हनुमान् की......। किधर है वह ?' कहते हुए श्री राम जी को पिता हनुमान् जी की ओर झपटा।

'हैं-हैं-हैं······अरे—आप पंडित जी···!' तबलची कहते ही रह गया। उसे एक ओर धकेल, वह आगे लपका।

'मैं निकालूँगा, इसका हनुमान्-पना। भाँग पीकर बैठा हनुमान्-गिरी करने चले। लौंडे का सिर फूट जाता...आया, हनुमान की दुम!' कह उसने हनुमान् की दुम पर हाथ चलाया। व्यास जी चिल्लाये—हनुमान् जी को सचेत किया।

दुम बचाउ हनुमान् उदारा...।

'दुम पर हाथ लगाया, तो अच्छा नहीं!' कह, हनुमान् जी ने उसे रोकना चाहा; पर उसने सफाई से दुम पकड़ जोर का झटका दिया—'अब बता, तेरी दुम की ऐसी की...!' श्री रामजी के पिता ने उसे फिर खींचा। हनुमान् जी गुर्दा दबा कर चीख पड़े 'आह मरा!' राम जी को गोद से नीचे बैठा, व्यास जी पोपले मुंह से जुगाली-सी करते हुए दौड़े, 'हैं-हैं-हैं, दुम उखड़ जायगी। हाय-हाय, राम-भगत पवनसुत के साथ यह व्यवहार—!'

'पूंछहि तो मर्कट की शोभा।
जाहि देखि रघुबर मन लोभा।
ऐसा कभी न कीजे···। हरे-हरे!'

—व्यासजी ने पास आ, रामजी के पिता के पंजे से पूंछ छुड़ा दी। खींच-तान में पूंछ का गोटा उतर गया। सूत भी ढीला हो गया।

'यह तुमने क्या अनर्थ किया, महाराज!' व्यास ने कहा।

'अजी, व्यासजी, मेरे लड़के का सिर टूट जाता, तो हनुमान् के बच्चे का क्या बिगड़ता ? देखो ना, कितना मोटा गुमड़ा पड़ गया सिर में। श्री रामजी का पिता अभी भी क्रोध में आँखें लाल किये था।

'हाय, न-जाने आज मेरी क्या मत मारी गई जो थोड़ी-सी भंग, नहीं तो सारी लीला होगई, कभी.....आज भगवान् राम के सिर में...' हनुमान् जी ने पश्चात्ताप की वाणी में कहा।

'और क्या !—कभी आज तक ऐसा नहीं हुआ !' व्यासजी समर्थन करते हुए बोले।

'बेचारे की दुम तो आज...।' अहि-रावण ने अपने कपड़े उतारते हुए, मज़ाक की।

'आज इसकी दुम न उखाड़ दूं तो...' श्री रामजी के पिता ने फिर लूं-साँय की !

व्यासजी ने उसका क्रोध शान्त करते हुए, समझाया—'दुम की ही तो महिमा है। इसी दुम ने लंका में आग लगाई—इसी से हनुमान् जी ने माता जानकी की सुध पाई। इसी दुम को तुम उखाड़ने को तैयार ! इतना क्रोध ! नारायण-नारायण !! इसी पूंछ पर भगवान् राम की कृपा—कहा, भी है—पूंछहि तो मर्कट की शोभा। आदि आदि...आज उन्हीं दुमधारी, अतुलित, बलधामा, अञ्जनी-पूत, पवनसुत-नामा...श्री हनुमान्जी ने भगवान् का उद्धार किया ! ऐसे भगवान् के महा-सेवक पर क्रोध !'

श्री रामजी का पिता क्रोध के उतरते ज्वर में डूबते-उतराते व्यासजी का पावन उपदेश सुन रहा था। उधर श्री रामजी सिसकियाँ बन्द कर आँसू पोंछ, हनुमान् की दयनीय दशा देख रहे थे। हनुमान् जी नीचा मुंह किये, पश्चात्ताप की उदासी से शिथिल मुष्टिका जमीन पर टेके, अपनी पूंछ की मरहम-पट्टी करा रहे थे। सब लोग आरती की तैयारी में लगे थे

और तबलची श्री हनुमान् जी की पूँछ पर संभाल-संभाल कर तूल और गोटा लपेट रहा था।

आज हनुमान् जी की ही आरती होने वाली है। आज की राम-लीला के इष्टदेव यही हैं।

: १३ :

अन्तिम उत्तर

भाग्य-नक्षत्रों की प्रेरणा या अकस्मात् संयोग—जाने में भी हो, तो आश्चर्य क्या !—श्यामा जब पास से गुजरती तो, गोकुल की अभिलषित पुतलियों में लजीली मुस्कान छिटक जाती। दोनों की अनेक बार भेंट होती, कभी अनजाने-बे-पहचाने वे लगते ही नहीं। आँखें आंखों को पहचान लेतीं—परस्पर उलझ पड़तीं, और मन से मन मिलने को मचलता। गोकुल के भावुक, आकुल हृदय में अशात-सा आत्म-विश्वास होता—परोक्ष-सी सबल प्रेरणा प्रोत्साहित करती। एक दिन एक अकस्मात् घटना इच्छित मिलन बन गई। सरदार पटेल का भाषण—लाखों की भीड़। किसी का गुम हो जाना असम्भव क्या ! शरीर-वर्षण साधारण बात। यदि कोई जवान लड़की भीड़ के भँवर में फँस जाय, तो लहरों की चपेटों में ही डगमगाती रहे। अनेक मनचले छैल-छबीले 'सभ्य' युवक भीड़ से पीड़ित होने का बहाना कर युवती पर ढल-ढल जायं।

यों हुआ—भाषण समाप्ति पर श्यामा जब निकल कर जाने लगी, तो भीड़ के जोशीले ज्वार ने उसे दूसरे किनारे पर जा पटका, और उसे वहाँ से बहा ले जाने के लिये दूसरी लहर पहले ही उमड़ी। श्यामा उसमें विवश हो बह जाय कि इससे पहले ही फुर्ती से गोकुल ने श्यामा की कलाई पकड़ खींच ली। श्यामा 'आह !' कर उठी और गोकुल को जो देखा—तो मुस्कान-भरा धन्यवाद दिया। गोकुल ने वीरगाथा-काल के वीर प्रेमियों के समान श्यामा का हृदय जीतने के लिये भीड़ की बढ़ती हुई बाढ़ के

सामने सोना अड़ा दिया। भीड़ छँट गई—श्यामा मुस्कान-डूबी पलकें गिरा, कृतज्ञता प्रकट कर, चली गई।

श्यामा चली गई—गोकुल के मन में मधुर धड़कन गुदगुदाकर, पुतलियों में रंगीली सपने सजाकर, पलकों में प्रतीक्षा के आकुल पल बखेर कर, और आशा की किरण चमका कर।

गोकुल कांग्रेस-कर्मी। नगर में जहाँ कांग्रेस की मीटिंग हो, तिरंगा लिये तैयार। कांग्रेस कैम्प लगे, तो गोकुल के हाथों पहला खूँटा गड़े। जेल भी कई बार जा चुका। अब भी जाने को तैयार। पर अब आवश्यकता ही न रही। कांग्रेस-शासन—देश स्वाधीन। गोकुल ने अपने जीवन के अमूल्य दिन—गदरी, जवानी-भरे, चंचल उमंग भरे १५ वर्ष—देश-सेवा में पिघला दिये। अब भी देश-सेवा की जलती हुई लगन; पर अब अकेले देश-सेवा करते रस न आता। मन-मृग किसी देश-भगतनी, चिर-संगिनि के पाने के लिए छलाँगें लगाता। एकाकी स्वयं सेवकाई करने में उत्साह नहीं—चमक नहीं। अभी तक भाग्य नहीं टकराया किसी कामिनी से। वैसे विवाह के लिये पचास-प्रतिशत तैयारी अनेक बार होकर रह गई। यानी, गोकुल कितनी ही बार तैयार हुआ, पर वह लड़की तैयार न हुई! इस बार गोकुल का मन आशा के हिंडोले में झूल उठा।

श्यामा और गोकुल का परिचय निकटता तक सघन हो गया। श्यामा के विचारों से गोकुल मुग्ध हो गया। कितने उच्च विचार हैं—कांग्रेस में अटूट विश्वास। गांधी जी में परम आस्था। अहिंसा की पुजारिन—और क्या चाहिए। एक बार श्यामा ने यहाँ तक कह दिया—समान विचारों का जीवन-साथी यदि मिल जाय तो, जीवन स्वर्ग बन जाय! गोकुल श्यामा के इस संवाद को बार-बार दोहराता। उसकी नस-नस में गुदगुदी की लहरें उमड़ पड़तीं। ओठों पर मुसकान खेल जाती! यानी कितना साफ़ संकेत—समान विचारों का जीवन-साथी!

यानी मैं कांग्रेसी, उसका कांग्रेस में पूरा विश्वास। मैं देश-भक्ति में कई बार जेल गया, वह गांधीजी की परम भक्त! दोनों के विचार समान। इसका स्पष्ट अर्थ है कि 'अहा-हहि!' गोकुल कल्पना करके खुशी से उछल पड़ा। बस, अब तो अपनी ओर से प्रस्ताव कर देना चाहिए। लजीली नारी और विशेषकर श्यामा, भला अपनी ओर से कैसे··· !

चाय पर तो श्यामा का आना-जाना कई बार हो ही चुका था। कई बार समाज, जात-पात, धर्म, ईश्वर पर भी खुलकर चर्चा हो ही चुकी थी—सब का अर्थ था 'तैयार है।'

श्यामा आज चाय पर आई थी गोकुल के यहां। गोकुल भावना में गद्‌गद। प्रस्ताव करने को आकुल! अवसर चूका तो उम्र भर पछताना। श्यामा ने मुस्कान, झिलमिल कटाक्ष गोकुल की पुतलियों से फिसलाते हुए, चाय का प्याला उठाया। गर्म चाय का आठों से चुम्बन भर किया और झिझक गई। प्याला मेज़ पर रख दिया।

'साथी मिल जाने से क्या रास्ता चलना सरल नहीं हो जाता श्यामा?' गोकुल ने अचानक प्रश्न किया।

'साथी यदि सफ़र में सहायक हो सकें, तो यात्रा एक मिठास बन जाती है।' श्यामा प्याले में चम्मच घुमाते हुए बोली। उत्तर सुनकर गोकुल का हृदय प्रेम की सफलता के उल्लास में उछलने लगा। ओठों पर मुस्कान खेल गई। श्यामा कितनी समझदार!

'पर, चुनाव में देर करने से क्या थकान नहीं आ जाती, और कभी-कभी इतनी थकान आ जाती है कि साथी मिल जाने पर पैर आगे नहीं बढ़ते।' गोकुल ने प्याले में चीनी डालते हुए कहा।

'इसमें क्या सन्देह!' श्यामा ने गोकुल की तरफ़ मुस्करा कर देखा, और एक घूँट चाय पीली।

'साथी जब प्राप्त हो, तब भी उससे अलग रहना... उसे प्राप्त न

करना...।' गोकुल कहते-कहते झिझक गया। नीची आँखें कर, चाय पीने लगा।

'लेकिन जो ख्वामख्वां सिर पड़कर साथी बनना चाहे—', श्यामा बोली।

गोकुल का हृदय चोट खाये पंछी की तरह छटपटा उठा। अजीब लड़की है, अभी तो हाँ कर रही थी—अभी क्या कहने लगी? शायद भूल से मुँह से निकल गया। कितने ही दिनों से परोक्ष-रूप से संकेत कर चुकी है।

'यह व्यक्तिगत व्यंग तो नहीं 'श्यामा'—क्या यह मेरे व्यक्तित्व पर प्रहार तो नहीं?' गोकुल उतरे हुए मुँह से बोला।

'ओह, मुझे माफ...मेरा तात्पर्य यह नहीं। तुम्हें क्या मैं पहचानती नहीं? तुम क्या किसी के गले पड़ सकते हो? जबरदस्ती का प्रश्न ही कहाँ। अपनी भावी संगिनी के विचार, अभिलाषा, स्वीकृति के बिना कभी तुम...। मुझसे गलती हुई...मुझे खेद है, गोकुल!' श्यामा ने गोकुल के चोट खाये हृदय को फिर सुकुमार स्पर्श से सहला दिया।

श्यामा मन में बहुत पछताई। गोकुल यदि किसी से विवाह करना चाहता है, तो मैं उसे गले पड़ना क्यों समझूँ? गोकुल के दिल को कितनी ठेस पहुँची। किसी की भावनाओं को आघात...। अपनी इच्छित लड़की की स्वकृति के बिना भला एक गाँधी-भक्त···।

बात को आगे न बढ़ने देने के लिये वह स्लाइस पर मक्खन लगाने लगी। गोकुल के हृदय में फिर आशा-किरण चमक उठी। वह सोचने लगा—श्यामा भूल से कह बैठी। वैसे, वह तैयार है। उसके विचार, अभिलाषा, स्वीकृति को क्या मैं जानता नहीं। बात स्पष्ट करने के लिये ही उसने इन सब बातों को दोहराया। स्पष्ट संकेत है—वह तैयार है। तब अपनी ओर से ही संकोच का पर्दा क्यों न हटा दिया जाय, वह भी दुविधा में न रहे। भावुकता-गद्‌गद्, प्रेम-आकुल स्वर में गोकुल ने कहा, 'दो

व्याकुल हृदय कब तक हाहाकार करते रहें ? कब तक दो मन एक होकर भी अलग-अलग रहें। दो दिलों की प्यासी धड़कन पर 'हाँ' की मुहर लग जाय, आज श्यामा ?'

'क्या ?' निर्भाव नयनों में, अनजान-सी श्यामा ने पूछा।

'जानकर भी अनजान न बनो, श्यामा ?'

'सचमुच, गोकुल, मैं कुछ भी नहीं समझी।' श्यामा फिर बोली।

'बोलो, श्यामा क्या मुझसे विवाह...... ?' गोकुल ने लजीली बेताबी से कहा। उत्तर की प्रतीक्षा में उसका हृदय धक्-धक् कर उठा। प्रतीक्षा पहाड़ बन गई। श्यामा कुछ न बोली। उसके रोम-रोम में बिजली-सी कौंध गई। नस-नस में लाज का आलस बह चला। उसके कानों में हजारों झींगुर गूँज उठे। नेत्र घूमने लगे। इस प्रश्न की उसे आशा न थी। गालों पर गुलाबी छा गई। पुतलियों में ज्ञात-यौवना की लाज नगीना बन झलक उठी। उसने श्यामा का जो लाज-भरा रूप देखा, विश्वास होगया। एक नारी उत्तर भी कैसे दे ? इस लजीली मौन-मुद्रा से ही क्या गोकुल तू नहीं जान सकता। मौन तो 'हाँ' का नाम है। सुनते ही श्यामा ऐसी सिमट गई—जैसे सोहाग-रात की घड़ियां हों! श्यामा, आज मैं कितना सुखी हूँ—स्वर्ग में!

श्यामा जैसे धीमें पानी में डूबी जा रही हो। अपने को संभालने के लिये प्याले और चम्मच से खेलने लगी। पलकें उठा कर गोकुल की प्रतीक्षा-विह्वल पलकों में झांका। गोकुल आशा से मुस्काया, श्यामा ने फिर पलकें गिरा लीं। चाय बनाने का अभिनय कर सोचने लगी—गोकुल के मुँह पर यह प्रश्न आया ही क्यों ? अजीब मूर्ख है—नारी के परिचय में आना, बस उससे शादी की आशा कर बैठना! यह इतना बुद्धू है, मैं आज समझी। अरे, अक्ल के दुश्मन, इतना तो समझना चाहिए कि विवाह मजाक तो नहीं। और नारी की क्षणिक कुशलता पाकर उसे पत्नी बनाने के मनसूबे! यही—उस दिन सरदार पटेल के भाषण में

मुझे भीड़ से बचाया, तो बस मेरे ऊपर अपना प्रेम भी थोपने लगा। मैं गाँधी जी में आस्था रखती हूँ, कांग्रेस पर भी विश्वास है, मेरा, तो क्या इसका अर्थ है—इससे विवाह कर लूँ! कैसा उलझन-भरा प्रश्न! मुँह तो बनवाले मुझ से विवाह करने के लिये……।

'श्यामा, तो……?' गोकुल ने फिर प्रश्न किया।

'क्या?' श्यामा बोली।

'आज, युगों की बेताबी का उत्तर दे दो, श्यामा।'

'नारी का शील-संकोच-दबा हृदय यथार्थ की भाषा नहीं बन सकता, गोकुल! और इतनी आवरण-हीनता भी कौन-सी कला है?' श्यामा ने फिर अपनी रहस्य-वाणी से गोकुल को अनिश्चय के वन में भटकता छोड़ दिया।

'तो क्या मैं समझ लूँ कि तुम 'हाँ' कह रही हो?' गोकुल की आशा जगमग आँखें अनुकूल उत्तर पाने के लिए प्रतीक्षा करने लगीं।

'आह, काश—मैं प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में दे सकती!' श्यामा ने उच्छ्वास छोड़ा।

'आज तो हृदय का अवगुण्ठन खोलना ही पड़ेगा, श्यामा—आज तो……!' गोकुल ने अनुनय की।

'क्या अभी तक तुम मुझे इतना भी नहीं समझ पाये, गोकुल? समझ पाते, तो प्रश्न ही क्यों करते?' श्यामा ने मुस्का कर गोकुल की ओर देखा और एक ही घूँट में ठण्डी चाय पी गई!

× × ×

'अच्छा, गोकुल, तुम्हें बड़ा कष्ट……क्षमा करना…मुझे गलत न समझना…। अच्छा, मैं…।' कहते हुए चंचल पुतलियों में मुस्का गोकुल की ओर शैतानी-भरा कटाक्ष फेंक श्यामा कभी की चली गई—और छोड़ गई गोकुल को अपने रहस्यमय उत्तर के भँवर में डूबते-उतराते। वह चली गई एक अवसाद की छाया छोड़ कर, जिसमें गोकुल

अपने मन की आशाओं का शब्द-कोश ले उसके उत्तर का अर्थ तलाश करने लगा।

मेज पर चाय छलकी थी। चीनी के कण बिखरे पड़े थे, दूध की बूंदें बिखरी पड़ी थीं। मक्खियाँ भिनभिना रही थीं—उनकी भिनभिनाहट में गोकुल श्यामा के उत्तर का अर्थ, गूँजता हुआ, सुन रहा था। मेज पर जो चाय और दूध के अधसूखे दाग लगे थे, उनमें उसे श्यामा की तारीक घुंघराली उँगलियाँ चित्र बनाती दीख रही थीं, और सामने रखे श्यामा के जूठे प्याले के किनारों पर उसे श्यामा के ओठों की मुहर लगी नजर आ रही थी। उसकी पलकों की छाया के नीचे श्यामा का वह लाज-भरा, गुलाबी मुसकान में नहाया रूप.....खेल रहा था, और कानों में बज रहे थे वे अँगड़ाई लेते हुए शर्माते-से शब्द—'क्या तुम अभी तक मुझे इतना भी नहीं पहचान पाये गोकुल? पहचान पाते तो प्रश्न ही क्यों करते।'

गोकुल सोचने लगा ठीक तो है—कितने ही दिन से श्यामा का और मेरा परिचय! वह मुझ से छिपी नहीं। जब कभी इस विषय पर वार्तालाप हुआ, सदा उसने मेरी आशा के अनुकूल उत्तर दिया। सदा मेरे विचारों का समर्थन—यही तो सब स्वीकृति के लक्षण। और उसने उस दिन कहा ही तो था—समान विचारों वाले साथियों का जीवन स्वर्ग बन जाता है। और हम दोनों पूर्णतः समान विचार वाले हैं ही। मैंने सचमुच, कितनी गलती की—आज उससे प्रश्न करके.....उसने मुझे कितना मूर्ख समझा होगा? वह जब पूर्ण रूप से तैयार है, तब प्रश्न ही क्यों? और प्रश्न करना तो अपने ऊपर ही सन्देह—उसकी स्वीकृति की चीर-फाड़। तभी तो उसने कहा—इतनी आवरण-हीनता भी कौन-सी कला है? हृदय की भाषा हृदय ही स्वयं समझे, तभी, सच्चा प्रेम। यही उसका अर्थ। स्पष्ट है, जब वह पहले ही मेरी बन चुकी तो आवरण-हीनता किस लिये?

कभी गोकुल सोचता—जब वह मुझे सचमुच इतना प्यार करती है,

तब इतना दुराव किस लिये ? तुरन्त मन उत्तर देता—नारी का संकोच-शील भला कब हृदय की यथार्थ भाषा बन सकता है। गोकुल, पड़ा-पड़ा, श्यामा के उत्तर के अर्थ तलाश कर रहा था—रामलखन आ पहुँचा।

'गोकुल···गोकुल भाई! अरे क्या, सो रहे हो ?' कह उसने गोकुल का कन्धा हिलाया। गोकुल का स्वप्न-भंग—हड़बड़ा कर उठा।

'चलना नहीं क्या ?···और यह क्या आज तो बड़ी-बड़ी दावतें··· !' रामलखन ने उसे गुदगुदाया।

'हाँ, आज···कोई विशेष तो नहीं—जरा, वही, तुम तो···।' गोकुल अपने में आते हुए बोला।

'अच्छा—उइ !' कह रामलखन ने गोकुल की उँगलियाँ दबाईं। गोकुल की आँखों में प्रेम-सफलता की चमक नाच गई।

'चलना है न आज···गांधी-ग्राउण्ड में ?'

'क्या है ?'

'जैसे कुछ पता ही नहीं—मौलाना आजाद का व्याख्यान।' रामलखन बोला।

'अच्छा—कब ?'

'साढ़े नौ तो बज चुके—बस दस से आरम्भ···।'

'तो चलो।' कह, गोकुल प्याले पर मक्खियाँ भिनभिनाती छोड़ उठ बैठा। उत्साह और उमंग से, आशा और अभिलाषा से कि श्यामा से आज फिर भेंट होगी। आज फिर उसकी सहायता कर अपने प्रेम की अक्की मुहर लगाने का अवसर पुनः प्राप्त होगा।

★

: १४ :

मेहमान

मंहगाई-काल, राशन-युग — सामान मिलने में कितनी मुसीबतें, फिर भी मेहमान आजाय तो जीवन के पुण्यों का दुष्परिणाम नहीं, तो और क्या ? आने वाले कब तिथि नक्षत्र देखकर चलते हैं ? जो अपने शुभ दर्शनों से मित्र-मिलापियों को कृतार्थ करना चाहते हैं, वे अवसर चूकने वाले नहीं। काम करने का ईमानदार इरादा चाहिये, दिल में लगन हो, भगवान् पर भरोसा और सस्ते शिकार मिलें, फिर अवसरों की क्या कमी ! प्रजातंत्र की घोषणा का शुभ दिन, रत्नदेव के यहाँ मेहमान आ गया। ऐसा ऐतिहासिक अवसर, दिल्ली में रत्नदेव अपना कभी का परिचित फिर क्यों चूका जाय ! रिश्ता भी निकाला उनकी पत्नी रामा से—भाई का।

उत्सव कभी का समाप्त, मेहमान टलने का सपना भी न देखता। रामा परेशान। रत्नदेव शर्म-संकोच के मारे कुछ कहें भी कैसे ! स्पष्ट रामा भी कुछ कह न सकती, पर मन ही मन कुढ़ती। उसे टालने का प्रयत्न करती। रत्नदेव आफिस जाते हुए आज कह गये "मैं वहीं कैण्टीन में खालूंगा।" रामा की तबीयत कुछ-कुछ खराब उसे और भी बहाना मिल गया। वह लेट रही। खाना न बनेगा, तंग आजायगा, दो-चार दिन इसी तरह रहेगा; शायद मुंह काला कर जाय। मेहमान घूम-घाम कर आया तो रामा को पलंग पर पड़ा पाया।

'अरे रामा, तुम्हें आज क्या···?' मेहमान आश्चर्य से बोला।

'पेट में दर्द—आह कभी-कभी तो ···आह···मरी··· ऐसा दौरा पड़ता है कि बस मरना···मरना !' रामा कराहते हुए बोली।

'उफ—इतना कष्ट है ! मुझे तो मालूम तक नहीं था। किसी डाक्टर को बुलाऊं ?' मेहमान दया और सहानुभूति से पिघल कर बोला। रामा घबराई, कमबख्त डाक्टर को ले आये तो और मुसीबत। करवट बदल कराहते हुए बोली, 'आह—नहीं·····डाक्टर-फाक्टर क्या !. ·····आह आज खाना कैसे बनेगा···लाज के मारे मैं तो···आह···हे भगवान !'

'इस मुसीबत मे खाना सूझता है···कौन पत्थर दिल खाने की बात सोचेगा रामा ?' मेहमान ने कहा।

'यह मर्दूद जब शुरू होता है, चार-चार, पाँच-पाँच दिन तक··· ओह···आज खाना भी नहीं बना, तुम भी क्या सोचोगे ?' रामा ने संकेत किया तो मेहमान तपाक से बोला, 'मैं दूध पीकर रह जाऊंगा। और कुछ फल आ जायंगे—मैं ले आऊंगा। उफ—क्या आराम पड़ा कुछ ?'

रामा भीतर ही भीतर बड़ी कुढ़ी, तेरा सिर मिटे बेशर्म। भूत की तरह पीछे पड़ा है। काला मुंह नहीं करेगा यहाँ से। मैं तो समझती थी, संकेत से मान जायगा—मरा, जमदूत कहीं का।

'पर आह—अन्न बिना पेट भरता है क्या···हे भगवान—।' रामा ने कहा।

'मेरी चिन्ता मत करो रामा, आराम से लेटी रहो। मेरा क्या, खाया, न खाया।' कह मेहमान उसके पास से उठ गया।

रामा ने सोचा, बला टली। मेहमान चला गया, रामा अभी लेटी रही। अपना क्या, रात के एक दो पराठे रखे होंगे, पेट में डाल दिन भर आराम करूंगी। जाय मिट्टा भाड़ में। मालूम तो पड़ेगा जब बाज़ार में

टक्करें खाता फिरेगा। खर्चे करना पड़ेगा। क्या फूली-फूली चुग रहा था। किस मुसीबत से पैसा आता है—लाल खून को काला करना पड़े··· तब मालूम हो। पन्द्रह दिन से मुलायम-मुलायम फुलके गरोड़ रहा है।

कब तक भीखती-खीजती। उठी कि जरा कुछ पेट में डाल ले। दफ्तर से नौकर भी आया। रत्नदेव के लिये दूध लेने के वास्ते। उठकर रसोई में गई। देखा हक्की-बक्की—एक भी बूँद नहीं। खिड़की खोली रात के दो चार पराँठे भी गायब! रामा झल्ला पड़ी—तेरा नाश हो मरे शनीचर! पेट है या शैतान की कब्र। दो सेर दूध डकार गया। चार पाँच परांठों पर भी हाथ साफ कर गया। अब बाबूजी को क्या अपना सिर भेजूँ।

'बीबी जी देर हो रही है।' नौकर ने जल्दी करने की याद दिलाई।

'दूध का एक बूँद नहीं। वह जमदूत है न ठहरा। मरा, सब चाट गया। दही भी शाम को कैसे जमेगी।' रामा ने विवशता प्रकट की।

'काला मुंह करो न बीबी जी, आजकल कितनी मुसीबत—कितनी कठिनाई...तबीयत वैसे खराब।' रामधुन बोला।

'ऊपर से इन मरों को पाथ-पाथ खिलाओ···।' रामा बात भी पूरी न कर पाई। मुस्काते हुये मेहमान आता दिखा। रामा ने रामधुन को आँखों-आँखों में संकेत किया—इश्! मेहमान ने आकर फलों की टोकरी रामा को थमाते हुए कहा, 'रामा, तुम न खाना ...।'

'मैं खाने लगी हूँ क्या—मेरी वैसे ही तबीयत···रामधुन आया था सोचा इसे ही रात के···।'

'रात के पराँठे···वह तो मैं। इतनी मँहगाई, राशन का समय···

अन्न देवता को ख़राब करना क्या ठीक है। वे तो मैं···।' रामा की बात काट मेहमान बोला।

रामा ने मन ही मन उसे कोसा—मिटा आया बड़ा ख्याल करने मंहगाई का। टलता है नहीं। ऊपर से बोली, 'बाबू जी के लिए दूध···।'

'मैं फल ले आया इसीलिए। ले रे, ले जा रामधुन।' कह मेहमान ने दो चार केले—दो चार संतरे-सेब उसको थमा दिये। वह चला गया।

'इतना काहे को ख़र्च करता है भैया···आजकल।' रामा ने शिष्टाचार दिखाया।

'मेरा अपना क्या—सब तुम्हारा ही मैना। हूँ हूँ हूं···और मेरा—तेरा क्या भैया-मैन में। मैं यहां हूँ ही तो···हूँ हूँ हूँ।' कह मेहमान ने केले और संतरे फाड़ने शुरू कर दिये। रामा कलेजा मसोस कर रह गई। खाये भी कैसे, दर्द का बहाना किये थी! मेहमान सामने बैठे खाये जा रहा है और रामा फलों को छू भी नहीं सकती!

× × ×

रत्नदेव जब दफ्तर से लौटा, मेहमान कहीं गया हुआ था। रामा भरी बैठी थी। दिनभर की भूखी और—मेहमान की हरकतों से तंग। रत्नदेव आये तो वह चिढ़ कर बोली,

'इसका मुंह काला कब करोगे? मुझ से नहीं खिलाये जाते सेफ-सेक कर मेमले।'

'तुम्हारा भैया है, ऐसी बात उसके लिये।' रत्नदेव ने और भी चुटकी ली।

'भाड़ में जाय ऐसा भैया। मिटे ने कभी भी दो पैसे हाथ पर नहीं

रखे। कभी जाना नहीं, कैसा तीज-त्योहार। आया अब हमारी छाती पर मूंग दलने।' रामा और भी तुनककर बोली।

'छाती पर मूँग दल रहा है या अपनी बहन को फल ला-लाकर खिला रहा है।'

'अपने बहनोई साब को खिलाता होगा फल—तभी तो उसे टिकाए हो···मेरा बस चले तो...।'

'तो मना किसने किया—मगर वह भी बड़ी मजबूत धात का बना है। बीमारी का बहाना करने से शायद...।' रत्नदेव ने सुझाया।

'कमबख्त अपने बाल-बच्चों को भी तो कभी...।'

'हाँ, बाल-बच्चों की याद दिलाने से शायद...।'

'मैं सच कहती हूँ, अब इस घर में एक पल का भी...।' रामा कहते-कहते रुकी।

'मैंने भी तय कर लिया, अब इस घर में एक पल का...।' बात पूरी न हुई, मेहमान भीतर आकर बोला,

'अब इस घर में एक पल को भी—क्या ?' मेहमान ने पूछा।

'बीमारी पीछा नहीं छोड़ती,' रत्नदेव बात बदल कर बोला।

'हा, आज तो दिन भर तड़फती रही मछली-सा। मेरा हृदय तो... ओह कितनी पीड़ा !' मेहमान पास बैठते हुए बोला।

'और यहाँ भी दो चार दिन रहते तो...यह रोग तो कमबख्त पाँच-पाँच दिन तक रहता है।' रत्नदेव बोले।

'ओफ—इतना कष्ट।' मेहमान ने करुण विस्मय किया।

'मेरा क्या पता, कब ठीक होऊँ। भैया तुम्हें यहाँ रहने में कितना कष्ट होगा। तुम अब अपने घर...।' रामा ने जी कड़ा करके कह ही दिया।

'तुम्हारी सेवा का अवसर भला इससे अच्छा कब मिलेगा।' मेहमान ने परमात्मा का धन्यवाद किया।

'ना ना, भैया तुम्हें कष्ट देना...।' रामा ने कहा।

'मेहमान को तकलीफ देना—बड़ा संकोच होता है। अब चले जाओ तो—।' रत्नदेव ने कहा।

'मेहमान—मैंने अपने को मेहमान कभी नहीं समझा—मुझे तो आप अपने घर का आदमी...।' मेहमान बोला।

'मेरा कुछ पता नहीं भैया कब तबीयत ठीक हो। तुम कब तक मुसीबत में—।' रामा ने दूसरा दाव चलाया।

'मुझे तुम इतना पाषाण-हृदय समझती हो रामा। कौन ऐसा निष्ठुर भाई होगा, जो अपनी बहन को तड़पता छोड़, अपने घर जाने की बात सोचे।' मेहमान पैतरा काट उनका वार साफ बचा गया।

रामा और रत्नदेव दिल ही दिल बड़े कुढ़े। अजब उल्लू है। बात का समझता नहीं बेवकूफ। रत्नदेव ने दूसरे प्रकार से उसे टालना चाहा। वह बोले, बात यह है, 'यहाँ से न जाने कहाँ जाना पड़े, इलाज के लिए। तुम कहाँ-कहाँ मुसीबत में मारे-मारे फिरोगे।'

'अपनों के साथ मुसीबत भी स्वर्ग-सुख। पढ़ा नहीं, लक्ष्मण किस प्रकार सीता-राम के साथ...।' "न ने यह वार भी काट गिराया। रत्नदेव मन ही मन झुंझलाया—आ"", लक्ष्मण का बच्चा। रामा को नई युक्ति सूझी। इसके बालकों की याद दिलाई जाय तो शायद उनका मोह सताये और वह यहाँ से चला जाय। वह शिथिल सुस्त कराह भरी बानी में बोली, 'यह तो ठीक भैया, पर तुम्हारे भी तो बाल बच्चे हैं। तुम हमारे साथ यहां रहो और वे तुम्हारी याद में वहाँ तड़पते रहें। यह अन्याय भी तो हमसे नहीं देखा जाता।'

'ओह, यह तो भूल ही गया था। तुम्हारे मोह में, सच ऐसा फँसा

रामा कि मैं अपने बाल-बच्चों को भूल ही गया। तुमने भली याद दिलाई...।' मेहमान बोला। रामा और रत्नदेव मन ही मन बड़े प्रसन्न हुए—तीर निशाने पर लगा। अब इस बालागन से पिण्ड छूटा। रत्नदेव ने फिर इसी बात को दोहराया और कहा, 'यह अत्याचार है, भैया कि तुम हमारे पास यहां रहो, और वे तुम्हारी याद में ...।'

'सच, खूब याद दिलाई। भाई साहब, मैं तो आपके प्रेम में भूल ही गया था। भली याद दिलाई—कल ही एक पत्र डालकर उन्हें भी यहीं बुलाये लेता हूँ।' मेहमान बोला और दोनों पराजित से ताकते रह गये।

× × ×

मेहमान मुसीबत बन गया। छठ महीना होने चला, टलने का नाम नहीं। रत्नदेव रामा के सभी शस्त्र व्यर्थ हो गये। नये हाथ न लगे, पुराने जंग खाये, प्रयोग करके, फिर असफल होने से क्या लाभ। मेहमान भी घर के बहुत से खर्चों में हाथ बंटाने लगा। फल तो प्रायः रोज ही ले आता। कभी-कभी नाश्ते का सामान भी। एक साड़ी भी रामा को लादी। रामा और रत्नदेव भी कुछ उदार बन गये—कुछ ढीले भी पड़ गए। कहें भी किस मुँह से। फिर भी रामा मेहमान से इतनी रुष्ट कि चाहती, वह बिस्तर गोल करले। मुँह भुरसा कर चला जाय।

महीने की दूसरी तारीख रहा म; बैठते ?" रत्नदेव और रामा नाश्ता कर रहे थे। छुट्टी थी। बिल लेकर ...ला आ गया। रत्नदेव और रामा प्रश्नवाचक पुतलियों से देखते रह गये। मेहमान पहले तो सकपटाया, पर सफाई से उठ, जरा दूर ही उसे रोक बोला, 'अरे तुमने काहे को कष्ट किया। वाह भाई जी, साथ खुद भिजवाने वाले थे!'

'मैं स्वयं आगया तो क्या। चलूँ ले आऊँ।' वह फल वाला बोला। मेहमान उसे रोक कर बोला, 'आज? पागल हुए हो?'

'क्यों, आज क्यों नहीं ?'

'मेरठ से तार आया है, उनकी बड़ी भाभी...उफ़ कितनी अच्छी थी ! उनको उसी ने पाला...मेरी चचेरी बहन...आह मेरी तो कमर टूट गई ।'

'उफ है भगवान......! अच्छा मैं चला ।' कह फल वाला वापस हो गया । ऐसी हालत में बिल कैसे मांगता ।

'कौन था ?' रामा ने जिज्ञासा की ।

'साहब के पास आया था, किसी नौकरी के लिए सिफारिश चाहता था । यानी यहाँ भी चैन नहीं लेने देते ।' कहते कहते मेहमान पूरा सेब चट कर गया ।

'हूँ' रामा ने हुंकार भर दिया । आनन-फानन में फलों के छिलकों का ढेर लगा दिया गया । मेहमान खा-पी कर डकार ले मटरगश्ती कर, हाजमा ठीक करने निकल गया ।

फलवाला जब लौट रहा था, तो लाला झुन्नामल बजाज मिल गया । बजाज को जब उसने खबर दी तो उसने कहा, 'बुद्धू ऐसे मौकों पर मातमपुरसी करनी चाहिए, या नजरें बचा भागना ।'

दोनों रत्नदेव के पास आ गये । रत्नदेव सोफा में पड़े समाचार-पत्र देख रहा था । रामा थकी-सी सवेरे का सिंगार उतार रही थी । दोनों गम्भीर मुखमुद्रा बनाए सामने आ बैठे । रत्नदेव ने प्रश्न-सूचक-सा होकर उनकी ओर देखा ।

'मेहमान के द्वारा मालूम हुआ कि...' [illegible] बोला ।

'परमात्मा की इच्छा । यहाँ मनुष्य का [illegible] नहीं । क्या बीमार थीं ?' फल वाले ने पूछा ।

'क्या ?' रत्नदेव बोला ।

'अभी पता चला कि आपकी भाभी । मेहमान ने बताया कि तार आया है । यह जवानी की मौत !'

'कैसी मोत ? कैसा तार !' रामा ने पूछा।

'साब की बड़ी भाभी की। मैं बिल लेने के लिए आया था, तो मेहमान ने मुझे लोटा दिया कि साहब की भाभी—।' फल वाला बोला।

'मेरी तो कोई भाभी है ही नहीं।' रत्नदेव बोले।

'अच्छा।' लाला ने विस्मय किया।

मेहमान ने कहा—'आपकी बडी भाभी मर गई। मैं फलों के बिल ले आया हूँ, तो सरकार आज बिल ? दूसरी होगई करीब ४३ रुपये !' फल वाला बोला।

'कैसा बिल—कैसे फल !' रत्नदेव ने चौंक कर पूछा ?

'मेहमान आपके हिसाब में फल लाता है रोज !'

'और ५३ रुपये मेरे भी। एक साड़ी और कुछ कमीज और मरदानी धोतियाँ ! लाला बोला।

रामा और रत्नदेव एक दूसरे का मुंह देखने लगे। मेहमान बाहर से घूम कर आया तो कमरे में गर्मा गर्म बातें सुनी। उसने रत्नदेव को कहते सुना, कैसा मेहमान चोर कहीं का हम नहीं जानते। पकड़ लो, साले को बीच बजार में।

और रामा बोली, 'मिटा जमदूत कहाँ से आ मरा जानें। मैं भी तो कहूँ। यह फल···।'

'आने दो नालायक को' रत्नदेव गर्मा होकर बोला !

मेहमान ने सुना मामला खराब है। अब बचना मुश्किल।

'तो सरकार गिलजाने दो उस चोर को।' कह दोनों उठने लगे मेहमान सिर पर पैर रखकर भागा।